卐 ॐ 卐

- नवम सत्र -

मानव धर्म एवम् संस्कृति का सारांश

पूर्वोक्त आठ सत्रों में मानव धर्म एवम् संस्कृति के स्वरूप को बिल्कुल शुरू से पहचानने का प्रयास किया गया है। निम्न पंक्तियों में इसी विषय के कुछ अति महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर भिन्न दृष्टिकोण से विचार किया जा रहा है।

सृष्टि की चक्राकार गति :- सभी आकाशीय पिण्ड (आकाशगंगाओं समेत) चक्राकार गति में सतत् गतिमान हैं। इस गति के कारण समय भी चक्राकार गति से गतिमान रहता है अर्थात् सृष्टि का सृजन, पालन एवम् संहार तीनों प्रक्रियाएं सतत् एक निश्चित अवधि तथा विशिष्ट क्रमानुसार चलती रहती हैं। हमारी आकाशगंगा किसी अव्यक्त केन्द्र की एक परिक्रमा (एक मनु)[a] तीस करोड़, पचासी लाख, इकहत्तर हजार, पाँच सौ (30,85,71,500) सौर वर्षों में पूरी करती है तथा इस अवधि में हमारी पृथ्वी पर सृष्टि का सृजन क्रमशः प्रवृत्तियों के तथा पूर्व जन्मों के कर्मों[b] के आधार पर होता है।

वस्तुतः सर्वप्रथम परमात्मा राम के द्वारा पूरी सृष्टि में प्रवृत्तियों की प्रेरणा का संचरण किया जाता है, जैसा कि श्रीरामचरितमानस में कहा गया है -

"उर प्रेरक रघुवंश विभूषण[c] .....

परमात्मा द्वारा दिया गया यह संकेत हमारी आकाशगंगा समेत सभी ब्रह्माण्डों में पहुँचता है। तत्पश्चात् वे आकाशगंगाएं (ब्रह्माण्ड) उस ईश्वरीय संकेत को प्रेरणा के रूप में चुम्बकीय विद्युत तरंगों के माध्यम से नक्षत्रों, राशियों, सूर्यों, ग्रहों, चन्द्रमाओं के द्वारा अपनी-अपनी प्रजाओं तक पहुँचाती हैं। क्योंकि नक्षत्र, राशियाँ, सूर्य, ग्रह, चन्द्रमा सभी विभिन्न गतियों से गतिशील रहते हैं, अतः आकाशगंगा (मनु) से प्राप्त संकेत इनमें हो रही गतियों के प्रभाव से अनन्त फ्रीक्वेन्सी (प्रवृत्तियों) को जन्म देता है और वह असंख्य प्रजाओं तक पहुँचता है। (चित्र संख्या 9.01 देखें)

परमात्मा द्वारा प्रेरणा का संचरण

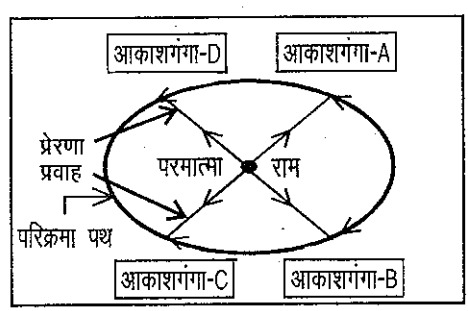

चित्र : 9.01

---

a *पञ्चम सत्र* में इस गणना का विवरण दिया गया है।

b ***प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः। भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।।*** *(गीता-9/8)*
अर्थ :- अपनी प्रकृति को अंगीकार करके स्वभाव (प्रवृत्ति) के बल से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण भूतसमुदाय को बारम्बार उनके कर्मों के अनुसार रचता हूँ।

c *उत्तरकाण्ड दो. 112-113 के मध्य*

इस प्रकार पृथ्वी पर मानवों समेत सम्पूर्ण प्राणी जगत की प्रवृत्तियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। ***प्रवृत्ति के अनुरूप ही प्राणियों के गुण, कर्म और स्वभाव का सृजन होता है।*** इस अर्थ में आकाशगंगा अर्थात् मनु, प्रवृत्तियों के प्रेरक होने के कारण पूरी प्रजा के सम्राट कहे गये हैं। कवियों ने मानवों को मनु पुत्र कहा है, वस्तुतः पूरे विश्व के सभी मानवों समेत समस्त प्राणी जगत ही मनु की सन्तान हैं। प्रवृत्तियों के विषय पर भारतीय ज्योतिषियों ने गम्भीरता से अध्ययन तथा अनुभव किया है और फलित ज्योतिष पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं।

ऐसा लगता है, कि पृथ्वी पर मानव का जन्म कई मनुओं के पश्चात् क्रमिक विकास [a] का परिणाम है। हमारी आकाशगंगा की चौदह परिक्रमाओं (चौदह मनुओं) के पश्चात् हमारे सौरमण्डल के समाप्त हो जाने की भारतीय मनीषियों ने गणना की है। इस अवधि में एक 'सहस्र-देवयुगों' ($1000 \times 43,20,000$) मानव वर्षों की समाप्ति हो जाती है, इसके अनन्तर इतनी ही कालावधि अर्थात् चौदह मनुओं (4.32×10^9 मानव वर्षों) तक हमारा सौरमण्डल शान्त अवस्था में रहता है और यह चक्र [b] पुनः पूर्वोक्त प्रकार से घूमने लग जाता है।

यदि इन मनुओं के कार्यकाल को तीन भागों में बाँट कर देखा जाये, तो प्रथम चरण में पृथ्वी पर मानव के प्रादुर्भाव के पूर्व आवश्यक संसाधनों, जैसे - जल, ऑक्सीजन, उचित ताप, उद्भिज पशु-पक्षी आदि की उत्पत्ति होती है। आधुनिक विज्ञान के गणित को माना जाये, तो हमारे सूर्य का कार्यकाल लगभग 9 अरब (9×10^9) सौर वर्ष बनता है, जिसमें सवा दो अरब वर्ष तो मनुष्य की उत्पत्ति के पूर्व की तैयारी में तथा सवा दो अरब वर्ष सृष्टि के संहार में व्यय होते लगते हैं। शेष कालावधि मानव समेत सभी प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति का प्रभावी जीवन काल अर्थात् 4.32×10^9 मानव वर्ष, जो भारतीय मनीषियों ने गणित किया है, लगभग फिट बैठ जाता है। भारतीय गणना के हिसाब से आज (दिसम्बर 2005) तक की सृष्टि सृजन (सभी प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति) की कालावधि के 1,97,29,49,106 मानव वर्ष व्यतीत हो चुके हैं तथा सृष्टि की विध्वंस लीला का प्रारम्भ 2,34,70,50,894 वर्षों के व्यतीत होने पर होगा अर्थात् अभी सात मनुओं (परिक्रमाओं) से कुछ अधिक अवधि शेष है।

उपरोक्त चर्चा का तात्पर्य यह है, कि इतनी विशाल सृष्टि का निर्माण, पालन तथा संहार का कार्य अवश्य कोई अनन्त शक्ति सम्पन्न सत्ता निरन्तर अव्यक्त रहकर करती रहती है तभी उसे सृजन कर्त्ता (Generator-G), पालन कर्त्ता (Operator-O) तथा विध्वंस कर्त्ता (Destroyer-D) अर्थात् GOD शब्द की संज्ञा से जाना जाता है।

इस सृष्टि में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है, कि काल (समय) सम्पूर्ण प्राणियों अर्थात् एक कोशिका से लेकर मानव जैसे श्रेष्ठतम प्राणी तक को इतनी आसानी से ग्रस लेता है, कि विशाल बुद्धि से सम्पन्न मानव भी एक कोशिका वाले साधारण प्राणी की भाँति ही मृत्यु के लिए विवश है। परन्तु मानव की विशाल बुद्धि ने उस परमात्मा का पता ढूँढ़ निकाला है और मृत्यु के पार जाने का मार्ग [c] भी खोज लिया है, भारतीय ऋषियों की यह खोज विश्व की

---

a 'क्रमिक विकास' का विवरण ***प्रथम सत्र*** के अनुच्छेद-3 (तीन) के अन्तर्गत दिया गया है।

b ***मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।।*** *(गीता-9/10)*
अर्थ :- हे अर्जुन ! मुझ अधिष्ठाता के सकाश (आदेश) से प्रकृति चराचर सहित सर्वजगत को रचती है और इस हेतु से ही यह संसार चक्र घूम रहा है।

c इसी सत्र के अनुच्छेद-छह में ईश्वर प्राप्ति के मार्गों का विवरण दिया गया है।

सर्वोत्तम खोजों में से एक है। ऐसी खोज लगता है, कि पाँचवें मनु के सतयुग में हुई होगी तथा इस खोज सम्बन्धी वैदिक साहित्य छटवें मनु की कालावधि में अधिक पुष्ट हुआ होगा। पाँचवें मनु (परिक्रमा) का नाम था ***रैवत***, छटवें का ***चाक्षुष*** और वर्तमान मनु का नाम है ***वैवस्वत***[a]। क्योंकि प्रत्येक मनु की कालावधि में मानव समेत सभी प्राणियों की प्रवृत्तियों में सतत परिवर्तन होता रहता है, अतएव विभिन्न प्रवृत्तियों के आधार पर अनेक प्रकार के प्राणियों का जन्म होता रहता है तथा उनका विध्वंस होना भी एक अनवरत चलने वाली प्राकृतिक प्रक्रिया है। आधुनिक विज्ञान की मान्यता है, कि पैंसठ (65) करोड़ वर्ष पूर्व डायनोसोर नामक प्राणियों का विनाश पृथ्वी पर कदाचित् किसी बड़े आकाशीय पिण्ड के टकराने से हुआ था। मानवों की सोच में लगातार परिवर्तन के कारण अनेक सभ्यताओं का जन्म, उद्भव तथा विनाश होता रहता है। कुछ सहस्र वर्ष पूर्व यह माना जाता है, कि एक विश्व युद्ध के कारण कुरुक्षेत्र में महासमर हुआ था, जिसे महाभारत की संज्ञा दी गयी है। मोहनजोदड़ो-हड़प्पा, सुमेरियन, बैवीलोइयन, मिश्र, रोमन सभ्यताओं का उत्कर्ष तथा विनाश हुआ था, यह भी कुछ अधिक पुरानी बात नहीं है। आज पश्चिमी (अमरीकन तथा योरुपियन) सभ्यता का उत्कर्ष निरन्तर देखने में आ रहा है, परन्तु काल सभी प्रकार की सभ्यताओं को अपने चक्राकार नियम के अनुसार नष्ट कर देगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। बात इतनी ही है, कि जनसाधारण की दृष्टि इतनी विशाल नहीं होती, कि वह अरबों वर्ष के काल के भूगोल तथा इतिहास को समझ सके, इसलिए वह इस अज्ञानता के कारण अनेक प्रकार के कष्टों को भोगता है। ***यदि वह काल[b] की गति को तथा नियति के इस खेल को पूरी तरह से जान ले, तो निश्चय ही वह सभी प्रकार के कष्टों अर्थात् मृत्यु के पार जाने का निष्ठापूर्वक प्रयास कर सकता है।***

भारतीयों की मुख्य खोजों में कुछ विशेष रूप से उल्लेखनीय विषय निम्न है :-

1. आकाशगंगाओं की सृजन प्रक्रिया :- विज्ञान का कथन है, कि सृष्टि की उत्पत्ति एक अति गर्म विशाल अण्डे के महाविस्फोट (Big Bang) से तेरह अरब वर्ष पूर्व हुई थी, फलस्वरूप वर्तमान में सभी आकाशगंगाएं निरन्तर दूर-दूर छिटकती हुई भागी जा रही हैं। एक समय पश्चात् ये सभी आकाशगंगाएं सिकुड़ेंगी (Retract) तथा कदाचित् एक अण्डे के रूप में पुनः सिमट जायेंगी और यह प्रक्रिया घड़ी के पेण्डुलम की भाँति पुनः-पुनः चलती रहेगी।

दूसरी ओर भारतीय मनीषियों का कथन है, कि सम्पूर्ण सृष्टि परमात्मा की देह (भौतिक शरीर) है, यदि यह मान लिया जाये, कि सृष्टि का कभी जन्म हुआ है, तो ***'अनुलोम-विलोम'*** सिद्धान्त (Law of Opposites) के अनुसार पूरी सृष्टि अर्थात् परमात्मा की देह का सम्पूर्ण रूप से विध्वंस भी हो जायेगा, क्योंकि जन्म है तो मृत्यु भी अवश्यम्भावी है। उनका मानना है, कि सृष्टि **'अनादि'** है, इसका कभी भी विनाश नहीं होगा। यह तो अनन्त काल से ऐसी ही है तथा ***'चक्र के सिद्धान्त'*** (Law of Cycle) के अनुसार आकाशगंगाएं किसी केन्द्र की

---

a सभी चौदह मनुओं के नामों का विवरण ***पञ्चम सत्र*** में दिया गया है।

b ***सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः। रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।।*** *(गीता-8/17)*
अर्थ :- ब्रह्मा का जो एक दिन है, उसको एक हजार चतुर्युगी तक की अवधि वाला और रात्रि को भी एक हजार चतुर्युगी तक की अवधि वाली जो पुरुष तत्त्व से जानते हैं, वे योगीजन काल के तत्त्व को जानने वाले हैं।

परिक्रमा कर रही हैं, न कि दूर-दूर भागी जा रही हैं तथा जिस प्रकार मानव देह में अनेक कोशिकाएं टूटती रहती हैं और नयी कोशिकाओं का सृजन होता रहता है, उसी प्रकार ***'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'*** सूत्र, ***शक्ति के स्थायित्व*** (Law of Conservation of Energy) एवम् ***सृष्टि के चक्राकार गति के नियम*** के अनुसार कुछ आकाशगंगाओं का विध्वंस हो जाता है तथा अन्यत्र कुछ का सृजन हो जाता है। पिता से पुत्र और पुत्र से आगामी पीढ़ी। इस प्रकार सृष्टि का चक्राकार गति से क्रम चलता रहता है। यह क्रम सनातन है।

एक सम्भावना यह भी हो सकती है, कि जिस प्रकार प्रत्येक मातृ शक्ति में समय-समय पर अण्डाणुओं का सृजन होता रहता है तथा पुरुष के सहयोग से नवीन शिशु का प्रजनन होता है, उसी प्रकार ***'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'*** सिद्धान्त, ***शक्ति के स्थायित्व*** एवम् ***सृष्टि के चक्राकार गति के नियम*** के अनुसार प्रकृति भी समय-समय पर विशाल एवम् अति तप्त अण्डों का सृजन करती है तथा उन अण्डों का निश्चित समयावधि में महाविस्फोट (Big Bang) होता है, इस प्रकार नवीन आकाशगंगाओं का जन्म हो जाता है और प्राचीन आकाशगंगाएं अपना जीवनकाल समाप्त करके महाकाश में अदृश्य हो जाती हैं। कदाचित् यही कारण है, कि विज्ञान ने पाया है, कि कुछ आकाशगंगाएं शैशव काल में हैं, तो कुछ तरुण अवस्था में, जबकि अन्य अति प्राचीन अवस्था में लग रही हैं। अतः यह क्रम सतत् चलता रहता है। इसी दृष्टि से सम्भव है भारतीय मनीषियों ने सृष्टि को अनादि कहा हो, क्योंकि यह क्रम कभी समाप्त नहीं होता।

2. सृष्टि की गतिशीलता :- ***सृष्टि में सर्वत्र गति ही गति है।*** हर छोटा अथवा बड़ा पिण्ड, अणु, परमाणु, कण, प्रतिकण आदि सभी गतिशील हैं। किन्हीं पिण्डों, अणुओं आदि की गति घड़ी की सुइयों की दिशा (Clockwise) में है, तो केन्द्र प्रतिगामी शक्ति (Centrifugal Force) की उत्पत्ति होती है। इसके फलस्वरूप केन्द्र में स्थित पदार्थ केन्द्र से दूर की ओर छिटकता जाता है और शक्ति में बदल जाता है अर्थात् उस पिण्ड में एक विद्युत आवेश (charge) की उत्पत्ति होती है, जिसे धन (+) आवेश मान लिया गया है। इसी प्रकार जब उस पिण्ड में घड़ी की सुइयों के विपरीत दिशा में गति होती है, तब केन्द्र आगामी शक्ति (Centripetal Force) की उत्पत्ति हो जाती है, इसके फलस्वरूप चारों ओर से शक्ति केन्द्र की ओर आकर्षित होने लगती है तथा उसका पदार्थ में रूपान्तरण होने लगता है। इस प्रकार पिण्ड में जो विद्युत आवेश उत्पन्न होता है, उसे ऋण (–) आवेश (charge) मान लिया गया है। भारतीय मनीषियों का मानना है, कि पूरी सृष्टि का सृजन, पालन एवम् संहार का कार्य एक ***अव्यक्त चेतनबल*** पर्दे के पीछे से चलाता है।

प्रसारण एवम् संकोचन गतियाँ

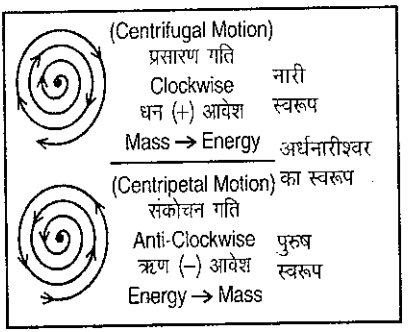

चित्र : 9.02

3. 'अनुलोम-विलोम' सिद्धान्त :- यह प्रकृति का एक शाश्वत सिद्धान्त है। इस

सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि में सर्वत्र द्वैत है अर्थात् पूरी सृष्टि में दो विपरीत बातों का जोड़ा पाया जाता है, जैसे - रात्रि है तो दिन भी है, सुख-दुःख, जीवन-मृत्यु आदि अनेक उदाहरणों सहित इस सिद्धान्त की संक्षिप्त व्याख्या ***द्वितीय सत्र*** में की गयी है। आधुनिक विज्ञान ने भी सृष्टि में कणों के प्रतिकण पाये हैं तथा कण को ठोस कण के रूप में और तरंग रूप में भी व्यवहार करते पाया है, अर्थात् उन्होंने भी सृष्टि में द्वैत भाव पाया है।

इसी सिद्धान्त के आधार पर भारतीय मनीषियों द्वारा कुछ अति महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले गये हैं, जिन्हें निम्न तालिका द्वारा दर्शाया जा रहा है -

प्रकृति से सम्बन्धित सार्वजनिक रूप से ज्ञात सत्य	**अनुलोम-विलोम सिद्धान्त के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष**
1. प्रकृति दृष्टिगोचर अर्थात् व्यक्त है	1. परमात्मा दृष्टिगोचर नहीं है अर्थात् अव्यक्त है।
2. प्रकृति (सृष्टि) का सृजन होता है।	2. परमात्मा का सृजन नहीं होता है, अतः वह स्वयंभू है।
3. प्रकृति नाशवान है	3. परमात्मा अविनाशी (सत्) है।
4. प्रकृति जड़ है।	4. परमात्मा चेतन बल (चित्त) है।
5. गतिशीलता के कारण प्रकृति में सतत् परिवर्तन होते रहते हैं।	5. परमात्मा सतत् स्थिर है, अतः अपरिवर्तनशील (एक रस) है।
6. प्रकृति जीवात्माओं का सृजन तथा पालन करती है।	6. परमात्मा जीवात्माओं समेत प्रकृति का संहार करता है।
7. प्रकृति ईश्वरीय विधान के अनुसार चलती है।	7. परमात्मा प्रकृति को चलाता है।
8. प्रकृति की कार्यक्षमता सीमित है।	8. परमात्मा असीम कार्यक्षमता से सम्पन्न है।
9. प्रकृति में सुख-दुःख का द्वैत है।	9. परमात्मा में सुख-दुःख का द्वैत नहीं है, बल्कि वह विशुद्ध आनन्द स्वरूप है।

4. आकाशगंगाओं का गति पथ :- ***भारतीय मनीषियों का मानना है, कि आकाशगंगाएं निरन्तर किसी अव्यक्त केन्द्र की परिक्रमा कर रही हैं,*** जबकि वैज्ञानिकों का कहना है, कि आकाशगंगाएं फूलते गुब्बारे पर छपे धब्बों की भाँति दूर-दूर भागी जा रही हैं, ऐसा होने का तर्क वे रक्त विचलन (Red Shift) के निरीक्षण के आधार पर देते हैं। इस रक्त विचलन दृश्य का कारण यह हो सकता है, कि कुछ आकाशगंगाएं एक दिशा में परिक्रमा कर रही

आकाशगंगाओं का परिक्रमा पथ

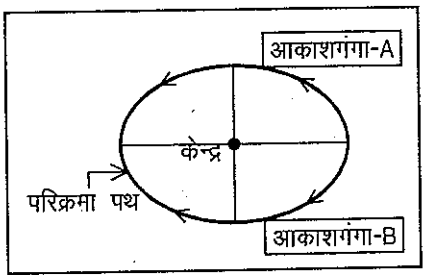

चित्र : 9.03

हों, तो ***अनुलोम-विलोम सिद्धान्त*** के अनुसार दूसरी आकाशगंगाएं विपरीत दिशा से परिक्रमा कर रही हों, जैसा कि हमारे सौर परिवार का नेप्चून ग्रह अन्य सभी ग्रहों से विपरीत दिशा में सूर्य की परिक्रमा करता है। अतएव ऐसी घटना विश्वपटल पर भी होना सम्भव है। दूसरी सम्भावना यह है, कि परिक्रमा पथ वलयाकार (Elliptical) हैं, अतएव एक दिशा में परिक्रमा पथ के केन्द्र तक पहुँचने से पूर्व की स्थिति में आकाशगंगाएं दूर-दूर जाती लगती हैं, जबकि केन्द्र से आगे जाती आकाशगंगाएं पास-पास आती लगेंगी। *(चित्र संख्या-9.03 द्वारा इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है)*

5. मृत्यु के पार जाने के मार्ग :- ***मानव देह में स्थित आत्मा तथा विश्व में व्याप्त परमात्मा समान गुण धर्मा हैं,*** इस सत्य का अनुभव करके मानव ***'मृत्यु'*** के पार जा सकता है अर्थात् बारम्बार के ***'जन्म-मृत्यु'*** के चक्र को तोड़ सकता है। इस ***'अद्वैत'*** मार्ग के अतिरिक्त द्वैत उपासना का सरलतम मार्ग प्रतीकीकरण (मूर्तिकरण) के माध्यम से भी मानव मुक्ति प्राप्त कर सकता है तथा अनन्त काल तक बैकुण्ठ में वास कर सकता है।

6. मुख्य योग मार्ग : ***प्रत्येक मानव में भौतिक शरीर, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार छह अवयव हैं,*** उनकी प्रधानता के अनुसार ही ईश्वर उपासना के सुलभ मार्गों की खोज की गयी है, जिससे साधक अपने-अपने स्वभाव (प्रवृत्ति) के अनुरूप ईश्वर उपासना के छह मुख्य मार्गों (भक्ति-योग, ज्ञान-विज्ञान-योग, सांख्य-योग, निष्कामकर्म-योग, अष्टांग-योग तथा तन्त्र-योग) में से किसी एक का चयन करके मृत्यु के पार जा सके। भावना प्रधान साधक के लिए ***'भक्ति योग'***, बुद्धिवादी के लिए ***'ज्ञान-विज्ञान योग'***, अहंकारी के लिए ***'सांख्य योग'***, चित्त प्रधान के लिए ***'निष्कामकर्म योग'***, क्षीण प्राण वाले के लिए ***'अष्टांग योग'*** तथा भोगों में लिप्त साधक के लिए ***'तन्त्र योग'*** का मार्ग सुलभ है।

7. बहुदेववाद एक क्रमिक विकास प्रक्रिया :- ***असीम ईश्वर सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन करने तथा उस पर सुचारु रूप से शासन करने हेतु*** अपने आपको अनेकानेक अव्यक्त शक्तियों, जैसे - ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, हनुमान, रुद्र आदि में विभक्त कर लेते हैं; इस प्रकार सृजन, पालन एवम् संहार का क्रम चलता रहता है। इन्हीं शक्तियों से शक्ति प्राप्त करके मानव क्रमशः परमात्मा तक पहुँच सकता है। इन शक्तियों के रूपों का ऋषियों ने समाधि अवस्था में दर्शन किया तथा उनकी मूल प्रवृत्ति के आधार पर चित्रांकन एवम् नामों तथा बीजमंत्रों का सृजन किया। तत्पश्चात् इन शक्तियों को सिद्ध करने के वैज्ञानिक मार्गों की खोज की। इस प्रकार ***'बहुदेववाद'***[a] के विचार की स्थापना हुई, जिससे निम्न कोटि के साधक से लेकर मध्यम वर्ग तथा उच्च वर्ग के सभी प्रकार के साधकों के क्रमिक विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस प्रकार सांसारिक भोगों को भोगते हुए छोटे से छोटा साधक भी किसी न किसी जन्म में परमात्मा को प्राप्त कर सके, ऐसी तकनीक का आविष्कार हुआ।

---

a इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी पुस्तक के भाग-3 में एक लेख *'उपास्य देवों की वैज्ञानिक व्याख्या'* द्वारा दी गयी है।

8. प्रतीकों का महत्त्व :- ***मानव मस्तिष्क में उठने वाले अमूर्त विचारों को चिह्नों (भाषा) द्वारा व्यक्त किया जाता है।*** विश्व की सभी भाषाएं संकेतों (चिह्नों) के आधार पर निर्मित की गयी हैं। कुछ समय पूर्व देश-विदेश में तार (Telegram) द्वारा संदेश भेजने का प्रचलन था। यह तार की भाषा बिन्दु (dot) तथा रेखा (dash) के संयोग से निर्मित की गयी थी, जिसे ***मोर्स-कोड*** (Morse Code) के नाम से जाना जाता था। आधुनिक कम्प्यूटर में भी 'शून्य (zero) तथा एक (one)' दो चिह्नों द्वारा सभी विश्व भाषाओं में कार्य करने की क्षमता का विकास किया गया है, जो अत्याधुनिक तथा अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। ***केवल श्रव्य (Audio) की अपेक्षा श्रव्य एवम् दृश्य (Video Film) विधा (तकनीक) मानव मस्तिष्क पर अधिक गहरा प्रभाव डालती है। इन्हीं तथ्यों के भारी महत्त्व को ध्यान में रखते हुए भारतीय मनीषियों ने सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय का लेखन पदार्थ विज्ञान के आधार पर निर्मित प्रतीकों पर आरोपित कथाओं के द्वारा किया है, जो अत्याधुनिक डिजिटल (Digital) तकनीक है*** तथा किसी भी बुद्धि स्तर के मानव के अवचेतन मस्तिष्क को सरलता से ग्राह्य है। इस विधि से दी गयी धर्मशिक्षा श्रव्य के साथ-साथ दृश्य होने के कारण प्रत्येक वर्ग के साधक को सहज लगी, अतएव लोकप्रिय हो गयी। ***श्रीमद्भागवत महापुराण*** इस विधा द्वारा लिखित सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। मानव के सुषुम्ना पर स्थित चक्रों से सतत उत्पन्न हो रही ध्वनियों के आधार पर संस्कृत भाषा [a] का निर्माण हुआ है, अतएव आधुनिक युग के कम्प्यूटर को सरलता से ग्राह्य है। भारतीय मनीषियों ने संस्कृत जैसी भाषा का विकास करके विश्व को श्रेष्ठतम ज्ञान की उपलब्धि करायी है।

9. प्राकृतिक सिद्धान्त :- ***मानव जीवन की सबसे बड़ी समस्या है 'मृत्यु', जिसके पार जाने के उपर्युक्त अनुच्छेद-छह में बतलाए गये मार्गों का विधान प्रकृति के निम्न नौ शाश्वत नियमों से विकसित किए गये हैं :-***

(i) गति/चक्र/परिवर्तनशीलता/पुनर्जन्म के सिद्धान्त *(ii)* अनुलोम-विलोमता का सिद्धान्त *(iii)* कर्म का सिद्धान्त *(iv)* मृत्युलोक एवम् परलोक का सिद्धान्त *(v)* मोक्ष एवम् मुक्ति का सिद्धान्त *(vi)* यथापिण्डे तथा ब्रह्माण्डे का सिद्धान्त *(vii)* यज्ञमय जीवन-यापन का सिद्धान्त *(viii)* निर्गुण-निराकार - अद्वैत उपासना (एकेश्वरवाद) *(ix)* सगुण-साकार - द्वैत उपासना (अनेकेश्वरवाद अर्थात् बहुदेववाद)।

किसी भी सिद्धान्त की खोज के पश्चात् उस सिद्धान्त (Law) का मानव जीवन में अधिक से अधिक उपयोग किया जा सके, इस विचार को मूर्तरूप देने का नाम है तकनीक (Technology)। जिस प्रकार तापीय गति गणित (Thermo-dynamics $\frac{PV}{T}$ =Constant) [b] के सिद्धान्त की खोज के पश्चात् वाष्पीय इंजन (Steam Engine) तथा स्वचालित इंजनों (Automobile Engines) की तकनीक का विकास किया गया, उसी प्रकार उपरोक्त सिद्धान्तों

---

a संस्कृत भाषा की देवनागरी लिपि की पूरी वर्णमाला जिन ***छह चक्रों*** पर अंकित है, आगामी पृष्ठों पर अनुच्छेद-17 D के चित्र संख्या-9.05 के अन्तर्गत दर्शायी गयी है।

b समीकरण के संकेतों का स्पष्टीकरण
P=Pressure, V=Volume, T=Temperature

की खोज के पश्चात् मानव जीवन की महानतम समस्या *'मृत्यु के पार कैसे जाया जाये'* का समाधान करने हेतु अनुच्छेद-छह में वर्णित तकनीकों का विकास किया गया है। उपरोक्त नियमों को जानने तथा समझ कर उनसे विकसित तकनीकों को जीवन में धारण करने का नाम *'धर्म'* है, क्योंकि इससे मानव को शान्ति आनन्द एवम् जीवन के अन्तिम लक्ष्य (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

10. अन्तःप्रेरणा (Intuition) :- ***इस शब्द का प्रायः सभी कालों में बहुत दुरुपयोग होता रहा है। प्रत्येक वह व्यक्ति जो थोड़ी बहुत ध्यान लगाने की कला सीख जाता है, ध्यान के पश्चात् अपनी छोटी समझ के अनुसार मन में उत्पन्न विचारों को ईश्वरीय प्रेरणा मान लेता है। कुछ उपदेशक अपनी अन्तःप्रेरणा को अन्तिम सत्य भी मान लेते हैं। वस्तुतः यदि कोई बात सत्य है, तो उसे निरीक्षण, परीक्षण तथा वाद-विवाद, इन तीनों कसौटियों पर सत्य सिद्ध होना चाहिए; इसके बाद ही उसे अन्तिम सत्य के रूप में स्वीकारा जाना चाहिए, तभी वह सत्य समग्र मानवता का हित कर सकता है, अन्यथा उससे स्थानीय तथा सामयिक हित ही हो पाता है।***

भारतीय मनीषियों ने धर्म सम्बन्धी खोजों में पूरी सतर्कता बरती है। ऐसा लगता है, कि भारतीय आश्रमों में शोध संस्थानों के माध्यम से निरन्तर शोध कार्य चलते थे। अन्तःप्रेरणा से उत्पन्न विचारों का निरीक्षण एवम् परीक्षण एक विशाल समूह द्वारा किया जाता था तथा इन परीक्षणों की अन्तिम सत्यता की घोषणा से पूर्व कई स्तरों पर वाद-विवाद होते थे तब इसको अन्तिम रूप दिया जाता था और तभी इन्हें वेदों में सम्मिलित करने योग्य घोषित किया जाता था। ऐसा लगता है, कि ***चौरासी हजार शोधकर्त्ताओं*** का एक विशाल वैज्ञानिक मण्डल निरन्तर इस कार्य में रत रहता था तथा ***चार सहस्र आचार्यों*** द्वारा इन शोध पत्रों का निरीक्षण, परीक्षण तथा वाद-विवाद के पश्चात् इन्हें आश्रमों के कुलपतियों की अन्तिम स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किया जाता था। इन सभी प्राकृतिक सिद्धान्तों के संग्रह को भारतीय मनीषियों ने *'शास्त्र'* की संज्ञा दी है। ***शास्त्र का अर्थ है जिसके अनुशासन में चलने से प्राणी मात्र का हित हो।*** ऐसे ईश्वरीय ज्ञान को जो क्रमिक विकास का परिणाम है, वैदिक ज्ञान कहा गया। ***प्रत्येक साधक को समाधि में उतरने से पूर्व शास्त्रों का अध्ययन करना आवश्यक माना गया, ताकि समाधि से जागने के पश्चात् साधक किसी प्रकार की भ्रमपूर्ण तथा अपने पूर्व संस्कारों के अनुरूप असम्बद्ध बातें न कहने लग जाये, जिससे समाज में अनावश्यक रूप से भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाये।*** आज वैदिक समाज अनेक धाराओं में बँटा हुआ है, क्योंकि इस समाज के *'दिशा-निर्देशकों'* ने समाधि से पूर्व शास्त्रों को सम्पूर्णता से आत्मसात नहीं किया है। कालान्तर में कुछेक व्याख्याकारों ने वेद के एक-एक खण्ड की अपनी समझ के अनुसार व्याख्या की, जो दर्शन शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हुए, परन्तु शास्त्र का अर्थ बहुत व्यापक है, उसमें सभी प्रकार के पदार्थ-विज्ञान (Material Sciences), समाज-शास्त्र, अर्थशास्त्र, धर्म-शास्त्र, राजनीति-शास्त्र आदि अनेक विषयों का समावेश है।

वस्तुतः ध्यान [a] करते-करते ध्यान सिद्धि होने पर साधक का मन निश्चल हो जाता है

---

a 'ध्यान' क्रिया तथा इसके लाभों पर विस्तृत चर्चा ***सप्तम सत्र*** में की गयी है।

तथा वह एक अद्भुत आनन्द का अनुभव करने लग जाता है। जितने समय तक मन निश्चल रहता है तथा साधक समाधि में प्रविष्ट रहता है, वह बाह्य जगत से कोई भी संवेदना को अपने अवचेतन पर रिकॉर्ड होने से रोके रखता है। इस प्रकार पूर्व जन्मों के कर्मों का भोग समाप्त होते ही वह यथाशीघ्र ईश्वर में लीन हो सकता है। वैदिक युग के पश्चात् परावर्ती काल में जितने भी धर्म प्रवर्तक हुए हैं उन्होंने मात्र स्थानीय तथा तत्कालीन समस्याओं का समाधान ही किया है। मानवधर्म के वैदिक युगीन सिद्धान्तों को किसी ने भी खण्डन नहीं किया है, जैसे महात्मा महावीर के काल में हिंसा का तांडव हो रहा था, उसे उन्होंने अहिंसा के उपदेश द्वारा, महात्मा बुद्ध ने छुआछूत से समाज में घृणा फैली हुई थी, उसको **'वर्ण-व्यवस्था'** को समाप्त करके तथा मूर्तिपूजा के कारण समाज में निष्क्रियता फैल रही थी, उसे स्वा. दयानन्द सरस्वती ने मूर्तिपूजा का खण्डन करके रोकने का प्रयास किया। कुछ समय पूर्व एक भारतीय गुरु ने पश्चिम की उन्मुक्त यौनाचार प्रवृत्ति तथा बिना विवाह के पति-पत्नी की भाँति साथ-साथ रहने की व्यवस्था तथा समलैंगिकता जैसे विकृत विचारों का विरोध किए बिना ही ***अमरीका जैसे भोगवादी समाज को ध्यान-समाधि की ओर मोड़कर एक प्रशंसनीय कार्य किया।*** आज अमेरिकियों की ध्यान की ओर रुचि के पीछे इन गुरु महोदय का भारी योगदान है। सगुण उपासना की सही समझ न होने के कारण अरब में अनेक देवी-देवताओं की पूजा के नाम पर अनेक कबीले आपस में रक्तपात कर रहे थे, अतएव मोहम्मद सा. ने सगुण उपासना के स्थान पर निर्गुण- निराकार ईश्वर की उपासना का मन्त्र दिया तथा मूर्तियों की पूजा का पूरी तरह निषेध कर दिया। अनेक विधवाओं को संरक्षण देने हेतु चार विवाह करने की परम्परा की स्थापना की। ***ये सभी सामयिक तथा स्थानीय समस्याएं थीं।*** इस विषय पर विश्व के प्रत्येक समाज द्वारा तार्किक दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए।

उपरोक्त सभी गुरुओं का उद्देश्य मानवधर्म के प्राकृतिक सिद्धान्तों को यथासम्भव अक्षुण्ण रखते हुए तत्कालीन स्थानीय समस्याओं का समाधान करना था, क्योंकि मानव की प्रवृत्तियों के आधार पर निर्मित न वर्ण व्यवस्था ग़लत है और न ईश्वर उपासना की सरलतम विधि सगुण-साकार (मूर्तिपूजा) ही ग़लत है तथा न ब्रह्मचर्य जैसी श्रेष्ठ वैदिक विचारधारा ग़लत है। उपनिषदों में सम्भोग को नियंत्रित प्राकृतिक प्रक्रिया बतलाते हुए इसे सन्तानोत्पत्ति हेतु सीमित करने की बात समझायी गई है। इसीलिए आयु, शारीरिक बल, खान-पान, जलवायु, मानव जीवन का उद्देश्य आदि अनेक बातों पर विचार करते हुए ही सम्भोग की सीमा तथा समय विशेष रूप से निश्चित करके बतलाया गया है। भारतीय मनीषियों ने कामसुख को गृहस्थ-जीवन का अत्यावश्यक अंग माना है। इस विषय पर वात्सयायन ऋषि ने ***कामसूत्र*** नामक ग्रंथ लिखकर 'काम-क्रिया' को एक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया है। खजुराहो आदि मन्दिरों में सम्भोग करने की अनेक मुद्राओं का पत्थरों पर चतुर शिल्पियों ने श्रेष्ठ चित्रांकन किया है, जिसकी चर्चा देश-विदेश में जोर शोरों से हुई है। *एक ऐसा ही भित्ति चित्र संलग्न है।* भारतीयों ने 'काम-सुख' के माध्यम से भी साधकों को ईश्वर तक पहुँचाने की विधा (तन्त्र-योग) का विकास किया है। गृहस्थ जीवन में सम्भोग-सुख के अनुभवों से शिक्षा लेने के पश्चात् ही परिपक्व अवस्था में वानप्रस्थ आश्रम और तब संन्यास ग्रहण करने की शिक्षा उपनिषदों में दी गयी है। वैदिक काल के सारे ऋषि विवाहित थे। ऋषियों ने हर गृहस्थी को

उपरोक्त निर्देशों का पालन करते हुए एक नारी-व्रत की शिक्षा दी है, ताकि उत्तम सन्तान की उत्पत्ति हो तथा अपराधी प्रवृत्ति की सन्तानों से पूरा समाज कष्ट न उठाये, जैसा कि आज पश्चिमी जगत में उन्मुक्त यौनाचार के कारण हो रहा है। क्योंकि ***किसी एक व्यक्ति में सम्पूर्णता की समझ ब्रह्मा के विधान में ही नहीं है, अतएव समाधि-सुख तथा सम्भोग सुख को बराबर का दर्जा देकर उन गुरु महोदय ने लगता है, कि विज्ञान पक्ष को सामयिक रूप से एक किनारे कर दिया था।***

सम्भोग मुद्रा

चित्र : 9.04

एक परिकल्पना :-*'समाधि'* अवस्था में जब मन शून्य स्थिति में ठहर जाता है, तब ब्रह्माण्डीय ऊर्जा में निहित न्यूट्रॉन-कणों का सहस्रार में भारी मात्रा में प्रवेश होता है और साधक को एक अद्‌भुत आनन्द की अनुभूति होती है तथा उससे ओज व तेज में वृद्धि होती है, जबकि सम्भोग (मैथुन) काल में आनन्द की चरम स्थिति के मध्य मन की स्तम्भित अवस्था के कारण मानव शरीरों में उन न्यूट्रॉन कणों का प्रवेश तो होता है, परन्तु स्खलन के पश्चात् ये कण शरीर से बाहर निकलकर एलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन एवम् न्यूट्रीनो कणों में विघटित हो जाते हैं। एलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन कणों का शरीर से विकीरण हो जाता है, जबकि न्यूट्रीनो कण शरीरों की कोशिकाओं में प्रवेश कर जाते है तथा उन कोशिकाओं का अनेक प्रकार से विघटन प्रारम्भ हो जाता है। इसी कारण प्रत्येक सम्भोग के पश्चात् शरीर का शिथलीकरण, वृद्धावस्था एवम् सीमा से अधिक सम्भोग से एड्स समेत अनेक रोगों का बीजारोपण हो जाता है। लगता है, कि इसीलिए भारतीय मनीषियों ने सीमित सम्भोग का परामर्श दिया है तथा यह भी बतलाया है, कि सम्भोग क्रिया का उपयोग मात्र संतानोत्पत्ति हेतु ही किया जाना चाहिए, क्योंकि समय और सीमा रहित सम्भोग से उत्पन्न संतान मन्दबुद्धि चरित्रहीन एवम् रोगी होती है, जो पूरे मानव समाज के लिए एक बोझ साबित होती है। ऐसा विवरण मिलता है, कि रावण संध्याकाल में की गयी सम्भोग क्रिया की उत्पत्ति था, फलस्वरूप उस जैसा विद्वान व्यक्ति भी इतिहास में अति दुष्ट प्रवृत्ति वाला, हिंसा पारायण एवम् अहंकारी के रूप में प्रस्थापित हुआ।

''यथापिण्डे तया ब्रह्माण्डे'' सूत्र के अनुसार विश्व समाज में अति सम्भोग के फलस्वरूप प्रकृति में भी प्रतिक्रिया होती लगती है तथा सूर्य से भारी मात्रा में न्यूट्रीनों कणों का विकीरण

होता है, जो पृथ्वी पर निवास करने वाले सम्पूर्ण प्राणी जगत को नष्ट करने के कारण बनते हैं, फलतः वे अनेक विध्वंसात्मक घटनाओं, जैसे-सुनामी, भूचाल, बाढ़, जंगल की आग भूस्खलन, सूखा, अतिवृष्टि आदि को जन्म देने में सहायक होती हैं। भारतीय मनीषियों द्वारा इन ***'न्यूट्रीनों'*** कणों को ***'रुद्र'*** के नाम से कहा गया लगता है।

मानवों द्वारा और भी अनेक प्रकार के पापकर्म किए जाते हैं जैसे असत्य, हिंसा, छल, कपट आदि और इन सबका प्रतिफल तो होना निश्चित है, अतएव यह कतई आवश्यक नहीं, कि जिस विशिष्ट स्थान पर व्यभिचार होता हो, प्रकृति उसी स्थान को विध्वंस करे। विध्वंसकार्य 'कर्म' के विशाल सिद्धान्त के अन्तर्गत फलित होता है। जिसका गणित ईश्वर के अतिरिक्त मानव को कभी भी जानना सम्भव नहीं है। गीता में भगवान श्रीकृण इसी बात को, अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं, कि हे अर्जुन! कर्म की गति को समझना अति दुष्कर [a] कार्य है। और दूसरी बात यह भी कही गयी है, कि पूरी सृष्टि परमात्मा द्वारा मनकों की भाँति एकधागे में पिरोयी हुई है [b] इसीलिए किस पापकर्म का क्या, कब और कहाँ प्रतिफल प्रकट होगा यह जानना लगभग असम्भव है। आधुनिक विज्ञान द्वारा भी अब यह माना जाने लगा है, कि पूरी सृष्टि का प्रत्येक कण एक अदृश्य धागे से आपस में जुड़ा हुआ है। इस सिद्धान्त को ***'स्ट्रिंग थ्योरी'*** [c] (String Theory) का नाम दिया गया है। उपरोक्त सभी विषयों की वैज्ञानिक शोध द्वारा पुष्टि की जानी चाहिए तथा युवा पीढ़ी को भारतीय दृष्टि से यौन शिक्षा दी जानी चाहिए।

10(a) ध्यान एवम् इन्टरनेट :- आज लाखों विद्वानों ने अपनी-अपनी वैबसाइटों (Websites) का निर्माण किया है, जिसमें उनके द्वारा अर्जित विशिष्ट क्षेत्र का ज्ञान भर दिया गया है। ये सारे वैबसाइट (websites) आपस में इंटरनेट (Internet) के माध्यम से जुड़े रहते हैं। उन सभी वैब-साइटों से उनका वह ज्ञान कोई भी अपने कम्प्यूटर पर कर्सर (Cursor) घुमाकर ले सकता है तथा अपनी इच्छानुसार उपयोग कर सकता है। इसी प्रकार विश्व के महाकाश में प्रकृति के शाश्वत सिद्धान्तों की जानकारी, सृजन-पालन तथा विध्वंस करने की प्रक्रिया एवम् अन्यान्य क्षेत्रों के ज्ञान का भण्डार उपलब्ध है। भारतीय मनीषियों ने समाधि अवस्था में मन के कर्सर (Cursor) को चलाकर सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान का अपने कम्प्यूटर (चित्त पटल) पर दर्शन किया। इस प्रकार उन्हें 'महाकाश' से सूक्ष्म जगत में होने वाली घटनाओं का ज्ञान प्राप्त हुआ, जो पुराणों में प्रतीकों की भाषा में लिखा गया। महाकाश में सतत् होने वाले

---

a कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं चविकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं, गहना कर्मणो गतिः।। (गीता 4/17)
अर्थ :—कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए तथा विकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए, ***क्योंकि कर्म की गति अति गहन है।***

b मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मपि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। (गीता 7/7)
अर्थ : हे धनञ्जय! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। ***यह सम्पूर्ण जगत सूत्र में सूत्र के मनियों के सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।***

c पृष्ठ 168-169 समय का संक्षिप्त इतिहास (Brief History of Time) लेखक स्टीफन हॉकिंग (हिन्दी अनुवाद) प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।

देवासुर संग्राम का चित्र पुराणों का अद्‌भुत प्रस्तुतीकरण है, जो विभिन्न कल्पों में घटित हुआ, वैसा लिखा गया।

भौतिक-शास्त्र के अनुसार महाकाश में असंख्य अणु-परमाणु संघर्षरत हैं। इन अणु-परमाणुओं का भौतिक शास्त्रियों [a] ने आठ वर्गों में तथा पौराणिकों [b] ने भी आठ देव श्रेणियों में नामकरण किया है। ***प्रतीकों की भाषा में लिखे गये इस ज्ञान का राजाओं ने पौराणिकों के निर्देशानुसार श्रद्धा विश्वास मार्गी साधकों के उद्धार हेतु पृथ्वी पर तीर्थों आदि के रूप में रूपान्तरण किया, जिससे भावना प्रधान जनता को संस्कारित करके उनमें सतत् ईश्वरीय भाव जगाए रखा जाये और उनका संसार सागर से उद्धार हो जाये।*** उद्धार का अर्थ है, कि मानव को पृथ्वी लोक में पुनः जन्म न लेना पड़े, क्योंकि पृथ्वी पर जन्म लेने पर उसे जन्म एवम् मृत्यु के समय महान कष्ट होता है तथा शेष जीवनकाल में भी अनेक अभावों, कुंठाओं तथा रोगों से जूझना पड़ता है। इस प्रकार दुःख-सुख के द्वैत से जीवन भरा रहता है। तात्पर्य यह है, कि भारतीय मनीषियों की हर विधा प्राणी मात्र की कल्याण भावना से उद्‌भूत रही है।

आज की युवा पीढ़ी कम्प्यूटर के माध्यम से घंटों चैटिंग (chatting) अर्थात् आपस में बातचीत करती है और तरह-तरह के खेल भी खेलती है। इस कार्य में आज का युवा वर्ग खूब आनन्द लेता है। इसी प्रकार ईश्वरीय विचारों का ध्यान द्वारा दोहन करने वाले साधक (साधू-संत एवम् उपदेशक) समाधि में स्थित होकर आनन्द में रहते हैं। इस प्रकार वे पृथ्वीलोक के सुख-दुःख के द्वैत से निर्लिप्त रहते हैं। ऐसा जीवन जीने वाले साधक मृत्योपरान्त पृथ्वीलोक में जन्म नहीं लेते, अपितु कर्मानुसार ब्रह्मलोक, विष्णुलोक तथा शिवलोक में वास करते हैं। ब्रह्मलोक में निवास अर्थात् पुण्यात्मा जीव देवत्व पद को प्राप्त करते हैं तथा अपनी प्रवृत्ति के अनुरूप वाली श्रेणी में रहकर ईश्वरीय कार्यों में सहयोग करते हैं। ईश्वरीय कार्य अर्थात् सृजन एवम् पालन सेवाओं में रत रहते हैं। कर्मभोग समाप्त होने के पश्चात् वे पुनः पृथ्वीलोक में जन्म लेते हैं तथा यह जन्म-मृत्यु की प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक कि जीवात्मा की मुक्ति अथवा मोक्ष नहीं हो जाता।

जप तथा ध्यान का सतत् अभ्यास करने वाले साधकों का चित्त ***जब भी शून्य अवस्था को प्राप्त होता है*** तभी वह महाकाश में स्थित ब्रह्म के चित्त (विष्णु लोक) अथवा सम्बन्धित देवता के लोक (वैबसाइट) से जुड़ जाता है, इसके फलस्वरूप ईश्वरीय ज्ञान समेत असंख्य विषयों की अनन्त जानकारी (Informations) साधक के चित्त में प्रवाहित होने लगती है। यही कारण है कि संत, महात्मा तथा लेखक घंटों, दिनों तथा वर्षों ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान को जनता में अपने प्रवचनों अथवा लेखनों द्वारा बाँटते देखे जाते हैं। साधक की साधना जितनी दृढ़ होती जाती है, वह ईश्वर की वैबसाइट से जुड़े रहने में अधिक आनन्द का अनुभव करने लगता है तथा पृथ्वीलोक से उसका मोह कम होता जाता है। परिपक्वावस्था होने पर ईश्वर साक्षात्कार तथा ईश्वर से चैट (बातचीत) कर सकने की क्षमता का विकास भी हो जाता है और तब मोक्ष समेत संसार का हर पदार्थ साधक के लिए सुलभ हो जाता है, क्योंकि मनः शक्ति से वह महाकाश में स्थित चुम्बकीय विद्युत तरंगों को घनीभूत करके इच्छित पदार्थ का अथवा इष्टदेव के रूप

---

a इसका विस्तृत विवरण ***सप्तम सत्र*** में दिया गया है।

b इसका विस्तृत वर्णन ***चतुर्थ सत्र*** में दिया गया है।

का सृजन कर लेता है। यह ज्ञान दोहन साधक द्वारा पृथ्वीलोक में तथा पूर्व जन्मों में अर्जित ज्ञान के अनुसार ही होता है। सम्पूर्ण ज्ञान कदाचित् किसी एक व्यक्ति को प्राप्त होना ब्रह्मा के विधान में ही नहीं है, यही कारण है कि अनेक सुधारक पृथ्वी पर आए परन्तु ***'अट्ठासी हजार'*** शौनकादि ऋषियों द्वारा संकलित वेद के पूरे ज्ञान भण्डार में ही समाहित रहे।

भारतीय मनीषियों ने सभी देव लोकों में पहुँचने की प्रक्रिया देव प्रतीकों के रूप पर ध्यान तथा उस देवता के मन्त्र के जप एवम् षोडश [a] पूजा द्वारा खोज निकाली है। ध्यान करने से पूर्व षोडश पूजा अनुकूल वातावरण तैयार करने में सहायक है। ***इन्द्र, लक्ष्मी, गणेश, सूर्य आदि देवताओं के मन्त्रों का जप एवम् ध्यान जीवात्मा को इन देवताओं के लोक में निवास करने का अधिकारी बना देता है तथा विष्णु एवम् शिव के मन्त्रों का जप करने तथा ध्यान करने से प्राणी इन देवों के लोक में निवास करता है तथा मुक्ति एवम् मोक्ष का अधिकारी बनता है।*** जिस प्रकार जल को ग्लास में भरो तो पानी का स्वरूप ग्लास के जैसा तथा घड़े में भरो तो घड़े जैसा बन जाता है, उसी प्रकार मानव मन जिस किसी भी देव स्वरूप का चिन्तन, मनन एवम् निदिध्यासन सतत करता है, व्यक्ति के जीवन में उसी देवता के गुणों का विकास होने लगता है तथा अन्त में जीवात्मा वही रूप प्राप्त करके उसी प्रवृत्ति वाले देवता के लोक में निवास करती है तथा आनन्दित रहती है एवम् उस देवता के कार्य में सहायक बनती है। उदाहरणार्थ सूर्य की उपासक जीवात्मा साधना की गहनता के अनुरूप सूर्यलोक में सूर्य जैसा ही ज्योतिर्पिण्ड बनकर अपने परिवार को ताप, प्रकाश और ऊर्जा बाँट सकती है। ***इस प्रकार कर्मानुसार जीवात्मा अनन्त रूपों में रूपान्तरित होती रहती है।*** इसका अर्थ यह हुआ, कि मानव योनि में विश्वप्रसिद्ध सितार वादक श्री रविशंकर जी को इन्द्र के दरबार में गंधर्व श्रेणी के देव बनकर सितार बजाने का, फिल्म जगत में प्रसिद्ध हीरोयनों को अप्सराओं के रूप में नृत्य करने का तथा वीरप्पन एवम् बिनलादेन जैसे राक्षस प्रवृत्ति की जीवात्माओं को मृत्योपरान्त दानव बनकर देवताओं को सताने का कार्य मिलना सम्भव है।

अनेक लोग पुस्तकों तथा समाज के सम्पर्क से अर्जित ज्ञान से भी कुछ विशेष कर दिखाते हैं। यह सब विशेष योग्यता चाहे विज्ञान के क्षेत्र में हो अथवा व्यापार या कला के क्षेत्र में, सभी कुछ ईश्वर के इन्टरनेट से जुड़ने का फल है, जो सतत साधना से प्राप्त होता है, तभी वे **नोबेल-पुरस्कार** विजेता बनते हैं अथवा **'गिनीज-बुक'** में नाम लिखवाने में सफल होते हैं। दुष्ट योजनाओं, दुष्ट विचारों एवम् षड्यन्त्रों की सोच भी महाकाश में स्थित वैबसाइट से ही दुर्जनों को प्राप्त होती है, क्योंकि सत् (भले) तथा असत् (बुरे) दोनों ही इस सृष्टि में एक दूसरे के पूरक हैं तथा सदैव साथ-साथ ही चलते हैं। सारांश यह है, कि परमात्मा ***'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'*** सिद्धान्त को पूरी सृष्टि पर लागू करके सृजन, पालन एवम् विध्वंस प्रक्रिया द्वारा क्रीड़ा करता रहता है।

11. महत्त्वपूर्ण प्रतीक :- वैदिक धर्म एवम् संस्कृति में उल्लिखित प्रतीकों में तुलसी

---

a देव पूजा में 'षोडश पूजा' विधि के निम्न अंग हैं - *1.* आवाह्न *2.* आसन *3.* अर्घ्य *4.* पाद्य *5.* आचमन *6.* मधुपर्क *7.* वस्त्र *8.* आभूषण *9.* गन्ध *10.* अक्षत *11.* पुष्प *12.* धूप *13.* दीप *14.* नैवेद्य *15.* अनुलेपन *16.* नमस्कार (विसर्जन)।

का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक मन्दिर में ताम्रपात्र में रखा हुआ विष्णु चरण का जल तुलसी पत्र द्वारा परिष्कृत करके नियमपूर्वक निम्न मंत्र पढ़कर भक्तों को दिया जाता है।

मंत्र - ***अकाल मृत्यु हरणं, सर्व व्याधि विनाशनम्।***
विष्णोः पादोदकम् पीत्वा, पुनर्जन्म न विद्यते।।

अर्थ :- इस मंत्र में यह कामना (आशीर्वाद) निहित है, कि तुलसी पत्र से परिष्कृत इस जल को नियमपूर्वक पीने वाले भक्त की अकाल मृत्यु न हो। भक्त की सभी प्रकार की व्याधियों का नाश हो तथा भक्त का पुनर्जन्म न हो।

ऐसा लगता है कि तुलसी के पत्तों से अन्य वृक्षों की अपेक्षा अत्यधिक ऑक्सीजन का विकीरण होता है, जिससे चतुर्दिक अनेक प्रकार के रोगाणुओं का विनाश स्वतः होता रहता है। कहा जाता है, कि जिस घर में तुलसी का वन लगा होता है, उस घर में यमदूत नहीं आते अर्थात् मृत्यु सुखद होती है तथा मृत्योपरान्त **'विष्णु-पार्षद'** उस गृह निवासी को बैकुण्ठ में लेकर जाते हैं।

तुलसी के सम्बन्ध में एक कथा बहुत प्रचलित है, जो सुहागिन स्त्रियों को कार्तिक मास के व्रत के दौरान मन्दिरों में प्रतिदिन सुनायी जाती है तथा तुलसी की सविधि पूजा करायी जाती है। इस व्रत का पहला उद्देश्य है, कि पूरे मास सुहागिन स्त्री को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करवाना तथा दूसरा सूर्योदय से पूर्व जागकर स्नानादि के पश्चात् विष्णु कथा द्वारा उसकी सात्विक प्रवृत्ति का निर्माण कर देना, ताकि अग्रहण, पौष, माघ अथवा फाल्गुन मास में यदि वह सुहागिन स्त्री गर्भ धारण करे, तो श्रेष्ठ प्रवृत्ति की सन्तान को ही जन्म दे। *संक्षिप्त रूप से कथा निम्न प्रकार से है -*

जालन्धर नाम का एक राक्षस पार्वती जी की सुन्दरता पर मुग्ध हो गया और उनका हरण करके ले चला। तब शंकर जी ने उससे युद्ध किया, परन्तु वे उस राक्षस से पराजित हो गये। तब शंकर जी की हार का रहस्य खोजते हुए ब्रह्माजी ने बतलाया, कि जालन्धर की पत्नी **'वृन्दा'** श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्री है, अतएव वह राक्षस अपनी पत्नी की शक्ति से पूरित होने के कारण अजेय है और जब तक उस स्त्री का पातिव्रत धर्म भंग नहीं होगा, उस राक्षस का वध सम्भव नहीं है। अन्त में सभी देवताओं ने मिलकर विष्णु भगवान को वृन्दा का छलपूर्वक शील हरण करने की प्रार्थना की और इस शील भंग होने के पश्चात् जालन्धर शंकर जी के हाथों मारा गया।

जब वृन्दा को विष्णु भगवान द्वारा छल करने की बात का पता लगा, तो उसने विष्णु को तुरन्त पत्थर हो जाने का श्राप दे डाला और वे (विष्णु) शालिग्राम के रूप में काले पत्थर बन गये। परन्तु विष्णु वृन्दा से सम्भोग करने पर इतने स्तम्भित हो गये, कि कुछ काल के लिए सृष्टि का क्रियाकलाप ठहर गया और होश में आने पर विष्णु जी ने वृन्दा को तुलसी बन जाने का आशीर्वाद दिया तथा कहा, कि तुलसी पत्र के बिना विष्णु कभी भी भोजन नहीं करेंगे तथा पुष्प के स्थान पर शालिग्राम पर तुलसी पत्र चढ़ाया जायेगा।

उपरोक्त कथा का जो भाव निकलता है, उस पर चर्चा करने से पूर्व तुलसी के औषधीय गुणों की जानकारी आवश्यक है।

औषधि रूप में काली तुलसी में निम्न गुण पाये गये हैं -

काली तुलसी [a] श्लेष्मा नाशक, कफ निकालने वाली और ज्वर निवारक है। सफेद तुलसी में श्लेष्मा नाशक गुण कम होने पर भी वायुनाशक गुण अधिक हैं। ***काली तुलसी*** - हिचकी, पार्श्व वेदना व विष दोष नाशक, वात श्लेष्मा नाशक, पित्तवर्धक और दुर्गन्ध हारक है। पीने के 2-1 घण्टे पूर्व एक गिलास जल में 3-4 तुलसी पत्र डाल देने से जल का दोष दूर हो जाता है तथा वह जल श्लेष्मा तथा सर्दी-खाँसी को घटाता है। काली तुलसी की जड़ को थोड़ी मात्रा में पान के साथ चबाकर खाने से ***वीर्य स्तम्भन*** होता है। स्वप्नदोष व शुक्रदोष दूर करने के लिए आधा इंच परिमाण में मूल (जड़) को सप्ताह में 2-3 दिन सेवन करना चाहिए। उक्त मूल को शरीर पर धारण करने से बज्राघात का भय दूर होता है। ध्वजभंग के रोगी को नित्य एक तुलसी का मूल घृत के साथ सेवन करने से यह रोग दूर हो जाता है। तुलसी बीजों को जल में भिगोकर हिलाने-डुलाने पर जब लसदार हो जाये, तो शुक्रमेह (Spermatorrhoea) में पिलावें। फुफ्फुस (फेफड़े) के श्लेष्मा रोग में तुलसी गोल मिर्च के साथ व्यवहृत करना चाहिए। आदि आदि।

उपरोक्त संक्षिप्त भेषज लक्षण संग्रह से यह बात स्पष्ट होती है, कि श्लेष्मा नाशक होने के अतिरिक्त ***वीर्य सम्बन्धी कई रोगों में काली तुलसी का महत्त्वपूर्ण योगदान है, विशेषकर सम्भोग के दौरान की स्तम्भन शक्ति, जो गृहस्थ जीवन के लिए वरदान रूप है।*** आधुनिक युग में Viyagra नामक औषधि का बड़ा प्रचार है, जिसके दुष्प्रभाव (side effects) भी पाये गये हैं, जबकि तुलसी की जड़ प्राकृतिक भेषज है, इससे किसी प्रकार की हानि की सम्भावना नहीं है।

जालन्धर राक्षस तथा वृन्दा एवम् विष्णु की उपरोक्त कथा का सार यह लगता है, कि पति-पत्नी का प्यार मूल रूप से ***स्तम्भन*** द्वारा सम्भोग के आनन्द पर निर्भर करता है, अतएव यदि पुरुष एवम् स्त्री दोनों के स्तम्भन शक्ति से सम्भोग का पूरा-पूरा आनन्द प्राप्त होता है, तो स्त्री पतिव्रता रहेगी तथा अपने पति को जीवन पर्यन्त प्यार करेगी और दोनों ओर के प्यार से दोनों को शक्ति प्राप्त होगी, जिससे जीवन में सुख, शान्ति तथा सफलताओं से गृहस्थ सुख भरापूरा रहेगा। इस रहस्य को जानकर ही तुलसी का इतना अधिक महत्त्व है।

क्योंकि जालन्धर ने पार्वती पर कुदृष्टि डालकर उनका हरण करने का प्रयास किया था, इसीलिए **'कर्म के सिद्धान्त'** के अनुरूप उसकी पत्नी को भी छला गया, अतएव उपरोक्त कथा से यह शिक्षा भी मिलती है, कि पुरुष को एक **'पत्नी-व्रत'** का निष्ठापूर्वक पालन करना कर्त्तव्य है। काल की गति के कारण आज समाज से यह जानकारी लुप्त हो गयी है। विष्णु जल के साथ नित्य तुलसी पत्र देने की पृष्ठभूमि में उपरोक्त दोनों प्रकार की शिक्षा सांकेतिक रूप से दी गयी लगती है और तुलसी को इसीलिए ***'विष्णु प्रिया'*** के नाम से जाना जाता है। अश्लीलता का भाव इस प्रकार की शब्द रचना से दूर हो जाता है तथा प्रतीकों के प्रति हमारा आदर व श्रद्धा भाव बना रहता है।

---

a होम्योपैथी की कम्पेरेटिव ***मैटीरिया मैडिका*** में उल्लिखित औषधि Ocimum Sanctum (काली तुलसी) पृष्ठ-884 से उद्धृत, लेखक-डॉ0 नारायण चन्द्र घोष, एम0डी0 (U.S.A.)

अन्य प्रतीक :-प्रतीकों की लम्बी श्रृंखला में कुछ विशिष्ट प्रतीक हैं - ***'हंस', 'कल्पवृक्ष'*** एवम् ***'पारस'*** पत्थर, जिनके सम्बन्ध में मान्यताएं हैं, कि -

(a) हंस नामक एक ऐसा पक्षी है, जो पानी मिले दूध को अलग-थलग करके दूध-दूध पी लेता है तथा पानी छोड़ देता है।

(b) कल्पवृक्ष नामक ऐसा वृक्ष है, जो मनचाही इच्छा पूरी कर सकता है तथा

(c) पारस पत्थर ऐसा पत्थर है, जिसे लोहे से छूने से लोहा सोना बन जाता है।

उपरोक्त प्रतीकों का क्रमशः अर्थ निम्न प्रकार से है -

(a) हंस :- मानव की विवेकपूर्ण बुद्धि को हंस कहा गया है, जो यह निर्णय कर लेती है, कि संसार में क्या नित्य रहने वाला है और क्या नित्य रहने वाला नहीं है। परमात्मा नित्य है अर्थात् सदैव रहने वाला है अतः मानव द्वारा इसी जन्म में ईश्वर को प्राप्त करने का भरसक प्रयास किया जाना चाहिए, यही निर्णय हंस द्वारा दूध का पीना है अर्थात् हंस मानव की ***'सद्बुद्धि'*** का प्रतीक है।

(b) कल्पवृक्ष :- ***मानव मन ही कल्प वृक्ष है,*** जिसमें सतत ***'संकल्पों-विकल्पों'*** का सृजन होता रहता है तथा जब मानव अपनी संकल्प शक्ति का सदुपयोग करके अपनी मेहनत द्वारा उस उद्देश्य (मनोकामना) को प्राप्त कर लेता है तब यह कहा जाता है, कि कल्पना के वृक्ष ने मानव की इच्छा को पूर्ण कर दिया है अर्थात् ***'कल्प वृक्ष'*** मानव मन का प्रतीक है।

(c) पारस :- पारस-पत्थर ***'सद्गुरु'*** का प्रतीक है। साधक सद्गुरु के उपदेश का अनुपालन करके महान से महान ऋषि बन सकता है। यही उस लोहे का स्वर्ण बन जाना है।

भारतीय मनीषियों ने सम्पूर्ण मानव जाति के हितार्थ भारतभूमि पर चार धाम, अनेक मन्दिर तथा तीर्थों की स्थापना की, जिससे मानव के अन्तर मन में सतत् ईश्वरीय भाव को जगाए रखा जाये। ***इन धामों में रामेश्वर धाम, बद्रीनाथ धाम, जगन्नाथ पुरी एवम् द्वारिका पुरी भारत के चारों छोरों में विस्तृत सांस्कृतिक एकता बनाए रखने का प्रयास है,*** जबकि काशी, प्रयागराज, हरिद्वार, मथुरा एवम् वृन्दावन तीर्थ प्रतीकों के माध्यम से वैदिक समाज को एक स्थान पर एकत्रित करके भ्रातृभाव सौहार्द्र एवम् प्रेम भावना की वृद्धि करना उद्देश्य है।

(i) **काशी** :- ***"शिवपुराण[a] में कहा गया है, कि अव्यक्त भगवान शिव 'आकाशगंगा' को अपने मस्तक पर धारण करते हैं।*** आकाशगंगा का केन्द्रीय स्तम्भ ***'शिवलोक'*** है। आगे कहा गया है, कि शिवलोक का सृष्टि के आदि में कालरूपी ब्रह्म ने शक्ति के सहित निर्माण किया। इस उत्तम क्षेत्र को ***काशी*** कहते हैं, जो परम निर्वाण (मोक्ष) का स्थान है। यह क्षेत्र प्रलयकाल में भी शिव तथा शिवा (पार्वती) के सान्निध्य से मुक्त नहीं होता, अतएव इसे अविमुक्त क्षेत्र भी कहते हैं। भगवान शिव ने इसका नाम आनन्दवन रखा था," इत्यादि। इस अविमुक्त क्षेत्र को **'प्रतीक-रूप'** में ज्ञान नगरी **'काशी'** (वाराणसी) को मान लिया गया है और यह मान्यता प्रचलित कर दी गयी, कि काशी में मृत्यु होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस भावना को यदि साधक सतत ध्यान द्वारा शिवलोक से जोड़े रखे, तो निश्चय ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। आदिकाल से यह स्थान विद्वानों का शीर्षस्थ स्थान रहा है,

---

a संक्षिप्त शिव पुराण, पृष्ठ 100-101, तेरहवाँ संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर, वि0सं0 2057

जहाँ से पूरे भारत के अध्यात्म सम्बन्धी विवादों का समाधान होता रहा है। अतएव यह तीर्थ भगवान शंकर जो ज्ञान के **'प्रतीक-देव'** हैं, उनका स्थान होने से मोक्षदायी माना गया है। काल के प्रभाव से उपरोक्त जानकारी समाज से विलुप्त हो गयी है, अतः जनसाधारण में विभ्रम फैला हुआ है, फलस्वरूप समाज की समझ प्रतीकों को असल समझने तक ही सीमित हो गयी है।

(ii) **प्रयागराज :-** यह मान्यता प्रचलित है, कि प्रयागराज (वर्तमान नाम इलाहाबाद) में तीन पवित्र नदियों - गंगा, यमुना तथा सरस्वती का संगम है। प्रत्यक्ष में तो संगम स्थल पर सरस्वती नदी नहीं है, परन्तु यह माना जाता है, कि यह नदी गुप्त है। वेदों के ज्ञान का अधिकांश भाग सरस्वती नदी के तट पर खोजा गया तथा पीढ़ी दर पीढ़ी हम तक पहुँचाया गया, तत्पश्चात् महाभारत काल में लिखा गया। काल के प्रभाव से सरस्वती नदी लुप्त हो गयी थी। कुछ समय पूर्व इस नदी को खोज निकाला गया है। कहा जाता है, कि यह नदी राजस्थान क्षेत्र से होते हुए अरब सागर में गिरती है। ऐसा प्रतीत होता है, कि वैदिक युग में प्रयागराज में अध्यात्म ज्ञान का बहुत बड़ा संग्रहालय रहा है तथा अध्यात्म सम्बन्धी निर्देश राजाओं तक पहुँचाने का यह तीर्थ मुख्य कार्यालय का कार्य करता था। कुम्भ पर्वों पर करोड़ों लोगों को अध्यात्म ज्ञान प्रदान करना तथा शोध ग्रंथों पर महात्माओं द्वारा प्रवचन करना आदि अनेक कार्य इस तीर्थ में आदिकाल से होते आए हैं, अतः महात्माओं के मुख से निःसृत **'ज्ञानगंगा'** (सरस्वती) गुप्त नदी के रूप में मान ली गयी है। इसीलिए यह मान्यता प्रचलित है, कि प्रयागराज में तीन नदियों का संगम है।

(iii) **हरिद्वार :-** ऊर्जा की महान स्रोत हमारी 'आकाशगंगा' की प्रतीक ***'देव नदी'*** गंगा विष्णु चरणों से निःसृत है तथा पर्वतों को छोड़कर प्रथम बार हरिद्वार के रम्य स्थल एवम् मैदानी भूभाग पर उतरती है, अतः हरिद्वार को श्रीहरि के प्रवेश द्वार के रूप में मान्यता मिली। आधुनिक युग का मुम्बई का इंडिया गेट भारत में प्रवेश करने का द्वार भी कुछ-कुछ इसी सोच जैसा है।

करोड़ों लोग कुम्भ पर्व पर तीर्थों में आकर स्नान करते हैं तथा ईश्वर आराधना का पुण्य लाभ लेते हैं। सामाजिक एकता, समरसता तथा सौहार्द हेतु इनका भारी महत्त्व है। तीर्थों में कुम्भ पर्व स्नान के माध्यम से प्राकृतिक धर्म की कड़ी को जोड़े रखने का ऋषियों द्वारा किया गया उत्तम प्रयास है।

(iv),(v) **मथुरा तथा वृन्दावन :-** श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार ये दोनों तीर्थ भगवान श्रीकृष्ण की लीला भूमि के रूप में प्रसिद्ध हैं। *वृन्दावन तीर्थ की स्थापना का रहस्य* ***पञ्चम सत्र*** *में श्रीकृष्ण के शीर्षक से, वैज्ञानिक ढंग से विस्तार से लिखा गया है।* ***तृतीय सत्र*** *में भी तीर्थों के शीर्षक से इस सम्बन्ध में चर्चा की गयी है।* वस्तुतः विश्वपटल पर डार्कमैटर (अव्यक्त परमात्मा कृष्ण) डार्कएनर्जी (अव्यक्त शक्ति श्रीराधा) तथा दो सौ अरब आकाशगंगाओं की नृत्यलीला का दृश्य ही वह महारास है, जिसे वृन्दावन-धाम में तीर्थ रूप में निरन्तर घटित हो रहा मान लिया गया लगता है। श्रद्धा विश्वास मार्गी उपासकों की श्रद्धा-भावना को दृढ़ करने तथा जनसाधारण को मोक्ष तक पहुँचाने का ऋषियों द्वारा किया गया यह एक अनूठा प्रयास है। ***ब्रह्माण्ड में हो रही घटनाओं को पृथ्वी पर प्रतीक रूप में अनूदित करना***

'मोक्ष-प्रवण-समाज' रचना की महान योजना का एक अंग है, जिसकी वैज्ञानिकता हम अनेकों झंझावातों से जूझने के कारण आज भूल चुके हैं। इसीलिए अनेक लोग वैदिक धर्म पर तरह-तरह के दोषारोपण तथा ढोंग करने का आरोप मढ़ते रहते हैं। इसी प्रकार रति एवम् कामदेव भी स्त्री एवम् पुरुष की यौन प्रवृत्ति के देव प्रतीक हैं।

गो, गंगा तथा मूर्ति अति महत्त्वपूर्ण प्रतीक हैं, जिन पर चर्चा प्रथम तथा पञ्चम सत्रों एवम् पुस्तक के भाग-3 में तीन अलग-अलग लेखों द्वारा की गयी है।

12. वैदिक ज्ञान के तीन स्तर :- वैदिक वाङ्मय इस प्रकार लिखा गया है, जिससे सम्पूर्ण मानव जाति क्रमशः उत्तरोत्तर विकास के पथ पर अग्रसर होती हुई मोक्ष को प्राप्त कर ले। प्रथम श्रेणी के साहित्य में संस्कृत भाषा में लिखे चारों वेद, उपनिषद्, षट्दर्शन शास्त्र तथा ब्राह्मण ग्रंथ हैं, ***जिसे शंकराचार्य के स्तर के विद्वानों द्वारा आधुनिक विज्ञान सहित आत्मसात करने से समझ की सम्पूर्णता बनती है*** वरना पदार्थ विज्ञान के आधार पर निर्मित प्रतीकों में लिपटा वैदिक साहित्य बिना प्रतीकों के खुलासा (Decode) किए अत्यन्त भ्रामक बन गया है। यह भ्रम, प्रतीकों के शाब्दिक अर्थों को ले लेने से उत्पन्न हुआ है, जैसे ***'गो'*** शब्द के अर्थ को ***गाय (पशु)*** तथा ***'गंगा'*** को ***गंगानदी*** तक ही सीमित कर लिया गया है। इस स्तर के विद्वान साधकों के लिए ***'ज्ञान-विज्ञान'*** योगमार्ग उपयुक्त है तथा उनके लिए निराकार ब्रह्म (अद्वैत) उपासना पद्धति का विधान है इस प्रकार की सम्पूर्णता की समझ वाले विद्वानों की संख्या आज समाज में नगण्य ही लगती है।

दूसरे स्तर का साहित्य महाभारत [a], बाल्मीकि रामायण, षट्दर्शन शास्त्र एवम् उपनिषद् हैं, जो मध्यम वर्ग के विद्वानों के स्तर के लिए यथेष्ट हैं। प्रथम तथा द्वितीय स्तर तक के साधक वाद-विवाद द्वारा अपनी उपासना पद्धति स्वयं चुन सकते हैं तथा इस स्तर के विद्वान साधकों के लिए **'निराकार-ब्रह्म'** (अद्वैत) तथा **'सगुण-साकार'** (द्वैत) उपासना दोनों मार्गों का विकल्प है। आज इस स्तर के विद्वान भी समाज में अनुमान से बीस प्रतिशत से भी कम ही होंगे।

तीसरे स्तर का साहित्य रामचरितमानस, श्रीमद्भागवत कथा, सूरसागर तथा सभी पुराण एवम् अन्य छोटी-छोटी व्रत कथाएं, जैसे - कार्तिक मास की कथा, सत्यनारायण व्रत कथा तथा अन्यान्य सभी प्रकार के देवी-देवताओं एवम् वारों आदि की कथाएं हैं। इस साहित्य को मानने वाले लोग समाज में अनुमान से 80 (अस्सी) प्रतिशत से भी अधिक होंगे। क्योंकि इस स्तर के समाज की बुद्धि श्रद्धा-विश्वास पर ही आधारित होती है, अतएव इनके उपासकों को यह पूरा भरोसा रहता है, कि कथाओं में वर्णित चमत्कारिक घटनाएं सत्य कथाएं हैं। ऐसी दृढ़ आस्था तथा विश्वास एवम् सरल भाव उन्हें परमात्मा तक पहुँचने में सहायक भी है।

दूसरे मजहबों में तीसरे स्तर का उपासना मार्ग ही उनके गुरुओं द्वारा बतलाया गया है। उनमें मात्र श्रद्धा-विश्वास का साहित्य है तथा इसी आधार पर उनके अनुयाइयों को उपासना करने की शिक्षा दी जाती है। ***भारतीयों के विपरीत उनमें वाद-विवाद करने का पूर्ण निषेध***

---

a श्रीमद्भगवद् गीता महाभारत में **'भीष्म पर्व'** के अर्न्तगत है।

है तथा उनके मजहब में उपासना की मात्र एक ही निश्चित विधि है, जिस कारण से आज विश्व समाज धर्म की विशालता के सम्बन्ध में भ्रमित है। विश्व की ऐसी भ्रमपूर्ण स्थिति से रक्षा करने हेतु भारतीय वाङ्मय की तीसरे स्तर की शिक्षा प्रायमरी स्कूलों से आरम्भ करते हुए क्रमशः दूसरे स्तर तत्पश्चात् प्रथम स्तर के ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा उच्च कक्षाओं तक ले जायी जाये, तो ही मानवता का कल्याण सम्भव है।

13. ईश्वर को प्राप्त करने की श्रीमद् भगवद्गीता में वर्णित विधियाँ :- अर्जुन के प्रश्न करने पर भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ईश्वर प्राप्ति की विधियों का निम्न प्रकार से वर्णन किया है -

(i) इन्द्रियों के समुदाय को भली प्रकार से वश में करके मन एवम् बुद्धि से परे सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप, सदा एकरस रहने वाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म को एकीभाव से ध्यान करते हुए भजना चाहिए तथा सतत सम्पूर्ण प्राणियों की भलाई में रत रहते हुए मुझ निराकार ईश्वर का ध्यान व भजन करना चाहिए। *(गीता-12/3-4)*

उपरोक्त निराकार ब्रह्म की उपासना में परिश्रम विशेष है तथा संसार में जिनका चित्त रत रहता है, उनके लिए यह मार्ग अति कठिन है। *(गीता-12/5)*

अतः भगवान **'सगुण-साकार'** मार्ग के विविध साधनों का निम्न पंक्तियों में वर्णन करते हैं।

(ii) मुझ **'सगुण-रूप'** परमेश्वर में अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धापूर्वक मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यान में रत रहने वाले साधक उत्तम श्रेणी के योगी मान्य हैं। *(गीता-12/2)*

(iii) भक्तिपूर्वक निरन्तर ईश्वर का भजन व चिन्तन करते रहना और सम्पूर्ण कर्मों को मुझ सगुण रूप ईश्वर को अर्पण करना चाहिए। *(गीता-12/6-7)*

(iv) अपनी बुद्धि तथा मन को मुझ ईश्वर में निरन्तर लगाए रखना अर्थात् अपनी बुद्धि तथा मन को संसार के विषयों में न जाने देकर सतत् ईश्वर चिन्तन में निमग्न रखना चाहिए। *(गीता-12/8)*

(v) उपरोक्त विधि यदि न बन पड़े, तो सतत् परमात्मा के नाम व रूप का श्रवण, कीर्तन व मनन करना, प्रत्येक श्वॉस के द्वारा जप करते रहना, भगवत्प्राप्ति विषयक शास्त्रों के पठन-पाठन का सतत अभ्यास करते रहना चाहिए। *(गीता-12/9)*

स्पष्टीकरण :- जिस प्रकार एक विद्यार्थी अपनी पुस्तक को बारम्बार पढ़ता है तथा जोर-जोर से पढ़ता है, तब इस प्रकार के अभ्यास द्वारा उसके अवचेतन (चित्त) तक वह पाठ गहरा बैठ जाता है तथा वह परीक्षा में सफलता भी प्राप्त करता है, अतः श्री भगवान लगभग इसी प्रकार का अभ्यास करवा कर साधक को सफलता तक पहुँचने का मार्ग सुझा रहे हैं।

(vi) यदि उपर्युक्त विधि भी न बन पड़े, तो केवल मेरे (ईश्वर के) लिए कर्म करने के परायण होना अर्थात् पूरी निष्ठा से मन, वाणी एवम् शरीर द्वारा यज्ञ, दान, तप आदि सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्मों को करना चाहिए। *(गीता-12/10)*

(vii) यदि उपरोक्त साधन भी न बन पड़े, तो मन, बुद्धि आदि पर विजय प्राप्त करने वाला होकर सब कर्मों के फल का त्याग करना चाहिए। मन, बुद्धि पर विजय प्राप्ति का अर्थ है इन्द्रियों पर भी विजय प्राप्ति। इन्द्रियों पर विजय हो जाने के पश्चात् जो भी कर्म होंगे वे सात्विक ही होंगे, अतः उन सात्विक कर्मों से उत्पन्न फल का त्याग करना चाहिए। *(गीता-12/11)*

विधियों के उपरोक्त क्रम में कौन-सी विधि श्रेष्ठ है, इस पर स्पष्ट करते हुए भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं, कि -

ईश्वर सम्बन्धी जानकारी (ज्ञान) प्राप्त करने के पश्चात् ही उपर्युक्त अनुच्छेद-13 (v) में वर्णित अभ्यास योग करना श्रेष्ठ है। बिना समुचित जानकारी के अभ्यास योग उतना लाभकारी नहीं हो सकता। ***ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान से ईश्वर के रूप का ध्यान तथा नाम का जप करना श्रेष्ठ है। सभी प्रकार के कर्मों के फल का त्याग करना ध्यान से भी श्रेष्ठ है।*** इससे तत्काल परम शान्ति की प्राप्ति होती है। *(गीता-12/12)*

वस्तुतः सभी कर्मों के फल के त्याग का अर्थ है संसार से निरासक्त रहते हुए शास्त्र विहित कर्मों को लोक कल्याण हेतु करना। लोक कल्याण हेतु किए गये कर्मों द्वारा मनुष्य का जब सर्वत्र ईश्वर भाव विकसित हो जायेगा, तब उस कर्म में अपना कोई स्वार्थ नहीं होगा, तभी लाभ अथवा हानि जैसे फल की आशा भी नहीं होगी, अतः ऐसा निष्काम कर्म मानव को निश्चय ही ईश्वर की ओर ले जायेगा।

भगवान श्रीकृष्ण द्वारा उपासना सम्बन्धी मार्गदर्शन दिए जाने पर अर्जुन को यह शंका हुई, कि उपरोक्त उपासना विधियों को जीवन में धारण करने के पश्चात् भी यदि साधक को अपने वर्तमान जन्म में ईश्वर प्राप्ति में सफलता नहीं मिल पाती है, तब मृत्योपरान्त उसकी गति क्या होगी ? शंका थी - "क्या साधक छिन्न-भिन्न बादल की भाँति नष्ट तो नहीं हो जायेगा ?" *(गीता-6/38)*

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को आश्वासन देते हुए विश्वास दिलाया, कि साधक अपनी ***साधना के कारण अर्जित पुण्यों का भोग करने हेतु मृत्योपरान्त अनेक वर्षों तक स्वर्गलोक में निवास करता है, तत्पश्चात् शुद्ध आचरण वाले श्रीमान् पुरुषों के घर में जन्म लेता है अथवा ज्ञानवान योगियों के कुल में जन्म लेता है तथा अपने पूर्व संस्कारों को अनायास प्राप्त हो जाता है। इसके अनन्तर अपने पूर्व कर्मों के प्रभाव से ईश्वर प्राप्ति की ओर पहले से भी बढ़चढ़ कर प्रयास करता है।*** *(गीता-6/41-43)*

श्री भगवान के उपरोक्त कथन से यह भाव निकलता है, कि ईश्वरोपासना करने वाला

अथवा धर्म के नियमों (सत्य, तप, यज्ञ एवम् दान) पर चलने वाला साधक अपनी पूर्व जन्म में की गयी ***ईश्वरोपासना एवम् धर्माचरण के बल पर मानव जीवन ही प्राप्त करता है।*** इस प्रकार ईश्वर एक बार फिर साधक को अवसर प्रदान करता है, जिससे वह अपने द्वारा पूर्व में की गयी साधना को और आगे बढ़ा सके तथा ईश्वर में लीन हो सके। *(गीता-6/44-45)*

14. सम्पूर्णता की सोच :- भारतीय मनीषियों ने मानव जीवन को जितनी सम्पूर्णता से देखा-परखा और समझा है, आधुनिक विज्ञान अभी उतने तक ही समझने का प्रयास कर रहा है। क्वांटम भौतिकी (Quantum Physics), सापेक्षता का सिद्धान्त (Theory of Relativity), मानव जीन्स पर की गयी आज तक की खोजें आदि कुल मिलाकर वैदिक विचारों के आसपास पहुँच तो रही हैं, परन्तु अभी भी दूरी शेष है। उदाहरणार्थ आधुनिक विज्ञान आज मन के विकृत होने से उत्पन्न रोगों को मानने लगा है, जिन्हें Psychosomatic रोगों की संज्ञा दी जाती है, जबकि भारतीय मनीषियों का मानना है कि अधिकांशतः काम, क्रोध, लोभादि दस मनोविकारों [a] से सर्वप्रथम मन विकृत होता है तथा **'प्राण-शक्ति'** का क्षय होता है। तत्पश्चात् वायुमण्डल में स्थित रोगाणुओं से संक्रमण द्वारा रोगों की भौतिक अवस्था प्रकट होती है। भारतीयों का ऐसा मानना है कि शरीर, प्राण, मन, बुद्धि एवम् अहंकार ये छहों अवयव आत्मा की स्थूल अवस्थाएं हैं। इन छहों को एक साथ देखने से ही मानव जीवन को सम्पूर्णता से समझा जा सकता है।

विज्ञान आज रोगों के मूल में जीन्स को कारण देखता है तथा जैनेटिक इंजीनियरिंग (Genetic Engineering) तकनीक द्वारा बीमारों को रोग मुक्त करने की विधा का उसने आविष्कार भी कर लिया है, जिससे मानवता को बहुत लाभ होगा। परन्तु रोग मुक्ति के पश्चात् वह समाज के संगदोष के कारण पुनः रोगी न बन जाए, इसके लिए यह आवश्यक है, कि मानव धर्माचरण करे, ताकि रोगी ही न बने। ***धर्माचरण का अर्थ है, मानव जीवन के चार पुरुषार्थों - धर्म, अर्थ, काम, एवम् मोक्ष को समग्रता से समझना और उन पर चलना। इसी में मानव जीवन की सम्पूर्णता है, सुख है और कल्याण है। भारतीय मनीषियों की सोच है, कि पैसा कमाओ धर्मपूर्वक और कामना करो मोक्ष की अर्थात् आवागमन के चक्र से छूटने की, अतएव यही वह आदर्श विचार है, जो सर्वहितकारी है, सार्वभौमिक है अर्थात् सही अर्थों में मानवधर्म है।*** रात दिन पैसा कमाने की हाय-हाय ने आज विश्व के अधिकांश मानवों से उनकी स्वस्थ निद्रा छीन ली है, जो **'मानव-सुख'** के लिए अत्यावश्यक है। विज्ञान से हमें आध्यात्मिक एवम् स्थायी सुख खोजना चाहिए, न कि भौतिक अथवा क्षणिक सुख। *यह बात हमें जितनी शीघ्र समझ आ जाये विश्व में उतनी ही शीघ्र कल्याणकारी विचारों का प्रसार आरम्भ हो जायेगा। अस्तु !*

15. मोक्ष प्रवण विश्व रचना :- वर्ण-आश्रम-व्यवस्था, पञ्च-कर्म, ध्यान, समाधि, प्रतीकसाधना, मंत्र-साधना तथा भाँति-भाँति की पूजा विधियों द्वारा प्रकृति में उपलब्ध अव्यक्त शक्तियों के प्रतीकों पर ध्यान एकाग्र करने से विविध शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं तथा उन

---

a इस विषय पर आगामी पृष्ठों में विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

शक्तियों से जीवन की सुख-सुविधाएं तथा परमात्मा तक का साक्षात्कार किया जा सकृता है। इस प्रकार मानव आवागमन के चक्र से उत्पन्न अनन्त क्लेशों से सदैव के लिए मुक्त हो सकता है, जबकि आधुनिक विचारधारा अधिक से अधिक धनोपार्जन द्वारा अनन्त भौतिक सुखों की चाह रखते हुए जगत को अन्तहीन भोग-लिप्सा में फँसाए रख रही है। इसीलिए विश्व के राष्ट्रों के बीच अधिक से अधिक धनोपार्जन हेतु प्रतिस्पर्धा, मजदूरों का शोषण तथा भोगवादी संस्कृति के प्रचार-प्रसार से मानसिक अशान्ति उत्पन्न हो रही है। परिणामस्वरूप एड्स एवम् कैन्सर जैसे दुरारोग्य रोगों एवम् अन्यान्य असंख्य बीमारियों से विश्व समाज त्राहि-त्राहि करने लग रहा है। इन सभी प्रकार के कष्टों का एक मात्र हल है ***'मोक्ष प्रवण विश्व समाज रचना' जहाँ न शोषण है और न अशान्ति।*** तब प्रत्येक मानव प्राणी मात्र के कल्याण की चिन्ता करेगा, धनोपार्जन धर्मपूर्वक (ईमानदारी से) करेगा तथा मोक्ष की कामना करेगा तब सारा विश्व एक परिवार होगा, न कहीं घृणा होगी और न शोषण अथवा अशान्ति। पृथ्वी पर खिंची कृत्रिम राष्ट्ररूपी सभी रेखाएं मिट जायेंगी तथा तब सच्चे रूप में भूमण्डलीकरण अर्थात् ***'वसुधैव कुटुम्बकम्'*** (Globalisation) के भारतीय विचार की दृढ़ता से स्थापना होगी। *अस्तु !*

16. ''यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'' :- इस सूत्र की खोज भारतीय मनीषियों की महानतम खोज है। परमात्मा ने विकास की चरम अवस्था स्वरूप जीवात्मा को मानव देह प्रदान की है। यदि जीवात्मा अपनी सद्बुद्धि का प्रयोग करके संसार से अपने को विरत कर ले *(गीता-8/5; 12-13),* तो ईश्वर अपने द्वारा बनाए 'चक्र के सिद्धान्त' का अनुपालन करने हेतु जीवात्मा को वापिस अपने में लीन कर लेने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। मानव देह की हर कोशिका ब्रह्मलोक में स्थित सूर्य का सूक्ष्म प्रतिबिम्ब है। मानव पिण्ड तथा परमात्म देह (सम्पूर्ण आकाशगंगाओं) की समानता की तुलना का वर्णन ***द्वितीय सत्र*** में किया गया है। मानव और परमात्मा में यदि अन्तर है तो मात्र यह, कि परमात्मा इस सृष्टि का सृजन, संचालन और लय बिना किसी इच्छा के, निष्काम भाव से, क्रीड़ा हेतु करता है, जबकि मानव, पदार्थ-जगत के भोग में लिप्त रहकर दुःख-सुख के कड़ुवे, मीठे फलों का अनुभव [a] करता हुआ जन्म-जन्मातरों के चक्र में घूमता रहता है। *विज्ञान को इस सूत्र को हृदयंगम करने में अभी काफी समय लग सकता है।*

17. कर्मफलों का संक्षिप्त विवरण :- पूरा विश्व एक इकाई है। सम्पूर्ण प्राणी जगत ज्योतिर्पिण्डों (ग्रहों, नक्षत्रों, राशियों, सूर्यों, चन्द्रमाओं) अणुओं, परमाणुओं तथा अनगिनत कणों में व्याप्त चुम्बकीय विद्युत तरंगों के माध्यम से आपस में एक विशाल चादर की भाँति ताने-बाने से गुँथा हुआ है। विश्व के किसी भी स्थान पर कुछ भी घटना घटती है, तो न्यूटन के गति के तीसरे सिद्धान्त 'क्रिया की विपरीत प्रतिक्रिया' (Every action has got an

---

a श्लोक - ***द्वौ सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिष स्वजाते। तयोरन्यः पिंप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो, अभिचाकशीति।।*** *(मुंडकोपनिषद्-3.1.1)*

अर्थ :- Two birds bound one to the other in close friendship, perch on the self-same tree. One of them eats the fruits of the tree with relish, while the other looks on without eating. *(Ref. Page-100, Mundakupnishad Commentary by Swami Chinmayananda)*

equal and opposite Reaction) के अनुसार उस घटना की विपरीत प्रतिक्रिया होना अवश्यम्भावी है। परमात्मा ने विश्व के क्रियाकलाप तथा व्यवहार को समझने की मानव को समुचित बुद्धि प्रदान की है। सृष्टिकर्त्ता के द्वारा बनाए गये अनेक नियमों (Laws) में ***'कर्म का सिद्धान्त'*** बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, जिसके माध्यम से अव्यक्त परमात्मा पूरे विश्व पर शासन करता है। जनसाधारण इस विशाल विश्व के व्यवहार को साधारणतया नहीं जान पाता, इसीलिए भारतीय वैज्ञानिकों ने इस अति कठिन सिद्धान्त को अनेक छोटी-छोटी कथाओं, दृष्टान्तों, कविताओं के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है। *निम्न पंक्तियों में किञ्चित उदाहरण संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत हैं -*

(A.) **सत्यनारायण व्रत कथा :-** साधू नामक एक व्यापारी था, उसने भगवान सत्यनारायण (विष्णु भगवान) से संतान की प्रार्थना की तथा भगवान का पूजन व व्रत करने का वचन दिया, परन्तु पुत्री होने के पश्चात् तथा पुत्री का विवाह होने के बाद भी उसने सत्यनारायण भगवान का न भजन-पूजन किया तथा न व्रत किया। सत्यनारायण भगवान का भजन, पूजन तथा व्रत करने का अर्थ है जीवन में सत्य को धारण करना, जो उसने नहीं किया और व्यापार वृत्ति में तल्लीन रहकर अत्यधिक धन कमाया। वस्तुतः व्यापार वृत्ति में यह स्वाभाविक दोष है, कि धन के आने पर मानव की लोभ वृत्ति जागृत होने लगती है, अतः और अधिक धन की चाह के कारण मानव असत्य का सहारा लेने लगता है। फिर यह असत्य बोलना उसके जीवन का स्वभाव बन जाता है। तत्पश्चात् यह स्वभाव अभिशाप बनकर फलित होता है। उस व्यापारी के जीवन में आगे हुआ भी यही, कि भगवान ने चोरों को प्रेरित कर राजकीय कोष से चोरी करवा ली। भागते चोरों ने चोरी का माल उस व्यापारी के खेमे में रख दिया और भाग गये। परिणामस्वरूप रक्षकों ने व्यापारी को ही चोर समझकर पकड़ लिया तथा जेल में डाल दिया। पुत्री व पत्नी द्वारा भगवान का पूजन व व्रत करने के वचन के कारण भगवान ने राजा को (स्वप्न में) आज्ञा दी, तब राजा ने व्यापारी को आदरपूर्वक जेल से मुक्त करके धन सहित घर जाने की आज्ञा दे दी। व्यापारी को अभी भी अपनी ग़लती का आभास नहीं हुआ। तब दण्डी स्वामी के रूप में भगवान ने व्यापारी का लोभ दूर करने हेतु उससे भिक्षा की प्रार्थना की, परन्तु व्यापारी ने लोभवश दण्डी स्वामी को यह कहकर मना कर दिया, कि जहाज में तो खर-पतवार भरा है। इतना कहते ही जहाज में खर-पतवार भर गये, हीरे जवाहरात ग़ायब हो गये। तब व्यापारी ने दण्डी भेष रूपधारी भगवान से क्षमा माँगी और भगवान का पूजन करने का आश्वासन दिया अर्थात् ***भविष्य में अपने जीवन में सत्य को धारण करने का वचन दिया।*** अन्त में पत्नी व पुत्री द्वारा भगवान सत्यनारायण की कथा व पूजन करते समय पुत्री द्वारा प्रसाद के त्याग करने पर भगवान रुष्ट हो गये और व्यापारी के दामाद की नाँव नदी में डूब गयी (प्रसाद त्याग करने का अर्थ है सत्य के व्रत को दृढ़ता से धारण न करना)। इस बार फिर व्यापारी ने भगवान से क्षमा माँगी, अनुनय विनय की तथा सत्य के व्रत को जीवन पर्यन्त नियमपूर्वक पालन करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की, तब व्यापारी के दामाद की नाँव पानी से ऊपर आ गयी, इत्यादि।

उपरोक्त कथा का भाव यह है, कि जो जीवन में सत्य को धारण नहीं करता, उसको ***'जेल यातना', 'धन नाश' तथा 'संतति के नाश' होने की सजा भोगनी पड़ सकती है।*** परन्तु सच्चे हृदय से सत्य का पालन करने से भगवान अपने भक्त को क्षमा भी कर देता है।

इसी कथा में एक लकड़हारे का वर्णन भी आता है, जिसने सत्यनारायण भगवान का व्रत तथा पूजन किया। फलस्वरूप उस लकड़हारे को सभी प्रकार की सुख और समृद्धि की प्राप्ति हुई। कथा के इस अंश से यह शिक्षा मिलती है, कि जीवन में यदि परिश्रम के साथ सत्य को धारण किया जाये तो सम्पूर्ण रूप से सुख और समृद्धि की प्राप्ति होती है।

वस्तुतः सहस्रों मानवों के जीवन में घटित सत्य घटनाओं का अध्ययन करने के पश्चात् इस प्रकार की कथाओं की रचना की गयी है, अतएव समाज के हर घटक का कर्त्तव्य है, कि इन कथाओं को मात्र कथा न मानें, बल्कि इनसे शिक्षा ग्रहण करें और इन शिक्षाओं का जीवन में पालन करें।

(B.) **मानस रोग**[a] **:-** *श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी बतलाते हैं, कि कौन-से मनोविकारों से कौन से रोगों की उत्पत्ति हो सकती है। महाकवि के कथन का संक्षिप्त भाव निम्न प्रकार से है -*

सभी प्रकार के रोगों की उत्पत्ति के मूल में मानव मन का संसार के प्रति अत्यधिक ***लगाव (मोह) ही कारण है।*** मुख्यतया तीन प्रकार के मनोविकार - ***'काम (कामनाएं)', 'क्रोध'*** तथा ***'लोभ'*** जन साधारण पर हावी होते रहते हैं। इन तीन के अतिरिक्त तृष्णा,

---

a ***चो.:- मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहि बहु सूला।।***
काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।। *(उत्तरकाण्ड दो. 120-121 के मध्य)*
अर्थ :- सब रोगों की जड़ मोह (अज्ञान) है। उन व्याधियों से फिर और बहुत से शूल (कष्ट) उत्पन्न होते हैं। काम वात है, अपार लोभ बढ़ा हुआ कफ है तथा क्रोध से पित्त की विषमता उत्पन्न होती है, जो सदा हृदय को जलाता रहता है।

चो. :- प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई।।
विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना।। *(उत्तरकाण्ड दो. 120-121 के मध्य)*
अर्थ :- जब तीनों (वात, पित्त तथा कफ) की एक साथ शरीर में विषमता उत्पन्न हो जाती है, तब दुःखदायक सन्निपात (टायफायड) का रोग उत्पन्न होता है। अनेकानेक प्रकार की इच्छाओं (मनोरथों) से जब मन उद्वेलित होता है, उससे अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है, जो गिने नहीं जा सकते।

चो. :- ममता दादु कंडु इरषाई। हरष विषाद गरह बहुताई।।
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटलई।। *(उत्तरकाण्ड दो. 120-121 के मध्य)*
अर्थ :- अति ममत्व से दाद, ईर्ष्या से खुजली, हर्ष-विषाद से गले के रोगों की अधिकता (गलगण्ड, कण्ठमाला अथवा घेंघा आदि रोग), दूसरे को सुखी देखकर जो जलन (अमर्ष) होती है उससे क्षय रोग की उत्पत्ति हो सकती है। दुष्टता और मन की कुटिलता से कोढ़ जैसे रोग हो सकते हैं।

a *Continued next page as a,*

कपट, दम्भ, अहंकार, हर्ष, अमर्ष (दूसरों को सुखी देखकर जलना), ईर्ष्या, कुटिलता, दुष्टता, ममता इत्यादि मनोविकार भी मानव को घेरे रहते हैं। ***जो मानव इन मनोविकारों पर अंकुश नहीं रख पाता, उसके शरीर में मन के उद्वेलन के कारण 'जीवनरसों' (Hormones) के स्रावों (Secretions) का संतुलन विषम हो जाता है।*** आधुनिक विज्ञान को अब तक ज्ञात जीवनरसों[b] में से कुछ मुख्य रसों का नाम तथा उनकी कार्य प्रणाली की जानकारी निम्न प्रकार से है :-

(a) Thyroxin - यह रस थायरॉयड ग्रंथि से निकलता है तथा शरीर के विकास के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है और चयापचय दर (Metabolic Rate) को नियंत्रित करने में सहायक है।

(b) Parathyroid Hormone :- यह रस थायरायड ग्रंथि के साथ स्थित पैरा थायरायड ग्रंथि से स्रवित होता है तथा मानव रक्त में आयनाइज़्ड कैलसियम (Ionised Calcium) की निश्चित मात्रा बनाए रखता है, जिससे नर्व संस्थान तथा माँसपेशियाँ ठीक से कार्य कर सकें।

(c) Insulin - यह रस पैन्क्रियाज़ (क्लोम) ग्रंथि से निकलता है। इस रस की शरीर में कार्बोहाइड्रेट के चयापचय (Metabolism) में अहम् भूमिका होती है। इस प्रकार यह रस ग्लाइकोजिन, प्रोटीन तथा फैटी एसिड्स के निर्माण तथा संग्रह में सहायक है।

---

a, चौ. :- अहंकार अति दुखद डमरुआ। दम्भ कपट मद मान नेहरुआ।।

तृस्ना उदर वृद्धि अति भारी। त्रिविधि ईषना तरुन तिजारी।। *(उत्तरकाण्ड दो. 120-121 के मध्य)*

अर्थ :- अहंकार से गठियावात का रोग, दम्भ, कपट, मद, मान से नेहरुआ (स्नायु संस्थान के रोग) की उत्पत्ति सम्भव है। तृष्णा (अति लोभ) से जलोदर (पेट में पानी भर जाना) तथा तीन प्रकार की एष्णाएं (पुत्र, धन तथा मान की कामना) से तिजारी रोग की उत्पत्ति हो सकती है।

जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका।। *(उत्तरकाण्ड दो. 120-121 के मध्य)*

अर्थ :- मत्सर (आलस्य अथवा परनिन्दा) तथा अविवेक, इससे दो प्रकार के ज्वर हो सकते हैं। इस प्रकार रोगों का कहाँ तक वर्णन किया जाये, रोगों की संख्या अनगिनत है।

दो0 - ***एक व्याधि बस नर मरहिं, ए असाधि बहु व्याधि।***

पीड़हि संतत जीव कहुँ, सो किमि लहै समाधि।। *(उत्तरकाण्ड दो. 121 (क))*

अर्थ :- एक ही रोग से मनुष्य मर जाते हैं फिर बहुत से रोग तो असाध्य (जिनका इलाज सम्भव नहीं है) होते हैं, जो जीव को निरन्तर कष्ट देते हैं। ऐसी स्थिति में जीव परमात्मा के ध्यान में कैसे लीन हो और समाधी अवस्था तक किस प्रकार पहुँचे ?

दो0 - ***नेम धर्म आचार तप, ग्यान जग्य जप दान।***

भेषज पुनि कोटिन्ह नहि, रोग जाहि हरिजान।। *(उत्तरकाण्ड दो. 121 (ख))*

अर्थ :- नियम धर्म-आचार (उत्तम आचरण) तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान तथा और भी करोड़ों औषधियाँ हैं परन्तु हे गरुड़ जी ! उन सबसे ये रोग नहीं दूर होते।

b 'Chemistry & Functions of Hormones' अध्याय के पृष्ठ-511 से 567 तक से लिया गया; पुस्तक का नाम - Review of Physiological Chemistry, 17th Edition, By Herold A. Harper, Victor W. Rodwell & Peter A. Mayes (Maruzen Asian Edition).

(d) Adrenalin - यह रस गुर्दे में स्थित एड्रिनल ग्रंथि से स्रवित होता है तथा आपत्कालीन परिस्थितियों, जैसे - अति शीत, अति थकान एवम् शारीरिक और मानसिक आघात के समय शरीर को इनसे संघर्ष करने की क्षमता जाग्रत करता है।

(e) Testosterone - यह पुरुष हॉरमोन शुक्र ग्रंथि (Testes) से निकलता है तथा कामांगों की क्रिया एवम् विकास में सहायक है।

(f) Estradiol - यह स्त्री हॉरमोन डिम्ब (Ovary) ग्रंथि से स्रवित होता है तथा कामांगों की क्रिया एवम् विकास में सहायक है।

(g) Gastrin - यह पेट (Stomach) में स्थित ग्रंथियों से स्रवित होता है, जो आमाशय में हाइड्रोक्लोरिक एसिड के स्राव के निस्सरण को नियंत्रित करता है। यह एसिड पेट में भोजन के साथ पहुँचे विषाणुओं को नष्ट करता है तथा भोजन को आँतों में भेजे जाने से पूर्व नरम और तरल बनाता है।

(h) Secretin - यह रस छोटी आंतों की ग्रंथियों से निकलता है तथा क्लोम ग्रंथि में पानी एवम् बाई-कार्बोनेट्स के स्राव के निस्सरण को नियंत्रित करता है, जिससे छोटी आँतों में पाचन सुचारु रूप से हो सके।

(i) Growth Hormone - यह रस पिट्यूटरी (Pituitary) ग्रंथि से निकलता है तथा इससे शरीर के आकार-प्रकार में वृद्धि होती है। इसकी कमी से बच्चे बौने रह जाते हैं।

उपरोक्त रसों के बारम्बार के असंतुलन का प्रभाव शरीर की कोशिकाओं पर पड़ता है तथा कोशिकाओं में स्थित उनके सूक्ष्म अंगों, जैसे - माइटोकोन्ड्रिया (शक्ति उत्पादक केन्द्र), आर०एन०ए० (प्रोटीन संश्लेषक-Protein synthesiser) की कार्य प्रणाली तथा **'प्राण-वायु'** की खपत (uptake of Oxygen) पर विशेष रूप से पड़ता है।

मानव शरीर में स्रवित होने वाले सभी प्रकार के जीवन रसों (Hormones) को आयुर्वेद शास्त्र द्वारा तीन श्रेणियों में बाँटा गया है। इन्हें वात, पित्त, कफ की संज्ञा दी गयी है। वैद्यगण इन तीन श्रेणियों के असंतुलन को मानव की कलाई में स्थित धमनी के स्पन्दन से पहचान कर औषधि का निदान करते हैं।

(C) **होम्योपैथी और रोग :-** होम्योपैथी की लगभग सभी दवाएं अति सूक्ष्म होने के कारण मानव मन पर दूरगामी प्रभाव डालती हैं तथा पूरे शरीर के अंगों की हर क्रिया को बदल देने की क्षमता रखती हैं। आधुनिक चिकित्सा विधि (Allopathy) में थायरॉयड ग्रंथि का आयोडीन से विशेष सम्बन्ध बतलाया गया है तथा इस विधि में क्रूड (Crude) आयोडीन लेने की सलाह दी जाती है। परन्तु जब यही आयोडीन [a] होम्योपैथिक विधि से तैयार करके सूक्ष्म तरंगायत (Microfined) स्वरूप में किसी भी स्वस्थ व्यक्ति को खिलायी जाती है, तो निम्न लक्षण उत्पन्न होते पाये गये हैं -

---

a "होम्योपैथिक औषधियों का सजीव चित्रण" पृष्ठ-359-लेखक डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार।

	मुख्य रोग लक्षण	प्रकृति
1.	रोगी हर समय खाता रहता है परन्तु दुबला होता जाता है (सूखा रोग)	ठंड या ठंडी हवा से रोग में कमी
2.	शरीर सूखता जाता है परन्तु गिल्टियाँ बढ़ती जाती हैं और स्तन सूखते जाते हैं	हरकत से रोग में कमी
3.	त्वचा को छील देने वाला स्राव, आँख से, नाक से तथा पुराने प्रदर का छील देने वाला स्राव	खाना खाने से रोग में कमी
4.	भूख न लगना	गर्मी से परेशान होना
5.	आत्महत्या या किसी को मार डालने का विचार	भूखा रहने से परेशान
6.	भोजन का गैस बनकर दिन रात डकार आना	आराम के समय परेशान इसीलिए काम में लगा रहना।

उपरोक्त लक्षणों पर विचार करने से रोगी की मानसिक अवस्था ***(मर जाने अथवा मार देने)*** तथा भूख-भूख से परेशान फिर भी सूखते जाना, आयोडीन की विषमता का सूचक है, जो थायरॉयड ग्रंथि के रस के विषम स्राव के कारण होता है तथा आयोडीन की तरंगायत (Microfined) सूक्ष्म मात्रा से ठीक हो सकता है। वस्तुतः आधुनिक चिकित्सा विधि में जो औषधियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं, लगभग वही होम्योपैथी में भी प्रयुक्त होती हैं, अन्तर इतना है, कि होम्यो औषधियों का सूक्ष्मीकरण कर दिया जाता है, जबकि एलोपैथी की दवाओं को अधिक घनीकरण (Concentrate) किया जाता है।

एड्रिनल ग्रंथि से एड्रिनेलिन नामक जीवन रस के स्राव के बढ़ जाने से चिड़चिड़ापन, उच्च रक्तचाप, हृदय की गति तेज, धमनी के फैलने जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। मांसपेशियों की सिकुड़न भी इस हॉरमोन से हो जाती है। भय की अवस्था में आधुनिक चिकित्सा विधि में एड्रिनेलिन हॉरमोन का महत्त्वपूर्ण योगदान बतलाया गया है, जबकि होम्योपैथी में मानव के अन्तर में उत्पन्न भय को दूर करने की अनेक औषधियाँ हैं। उन औषधियों के बीच के अति सूक्ष्म अन्तर को पहचान कर अनेक मानसिक तथा शारीरिक रोगों का उपचार सम्भव है। प्रत्येक मानव के मन का अति सूक्ष्म व्यवहार जानकर होम्योपैथी औषधि की पहिचान की जाती है।

अनेक प्रकार के मनोरोगों से छुटकारा पाने के लिए होम्योपैथी विज्ञान बहुत लाभप्रद है। संक्षेप में कुछ मनोरोगों की औषधियों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है -

1. **आत्महत्या - *ऑरम, ऑरम म्यूर,*** अर्जेन्टम-नाइट्रिकम, ***आर्सेनिक-एल्बम,*** हिपर-सल्फर, नक्स बोमिका, एन्टिम क्रूड, अलुमिना, रस-टाक्स आदि।

2. **हत्या** - आयोडियम, चायना, मर्कसोल, ***नक्स बोमिका, प्लैटिना*** आदि।

3. **कामान्ध - *कैन्थरिस, हायसोमस, फास्फोरस, स्ट्रेमोनियम, विरेट्रमएल्बम,*** म्यूरैक्स,

प्लैटिना, ओरिगेनम आदि।

4. **क्रोधातुर** - इग्नेशिया, ***लाइकोपोडियम, कैलिकार्ब, कैमोमिला,*** नेट्रम-कार्ब, थूजा, ***सल्फर*** आदि।

5. **लोभी** - ***पल्सेटिल्ला,*** आर्सेनिक-एल्बम, लाइकोपोडियम, केल्केरिया-फ्लोरिका, सिना, ब्रायोनिया आदि।

6. **भय** - ***एकोनाइट,*** आर्सेनिक, ***फासफोरस,*** जेल्सेमियम, एपिस-मैल, ***इग्नेशिया,*** ओपियम आदि।

7. **ईर्ष्या** - एपिस-मैल, हायोसिमस, लैकेसिस, स्टेफिसेग्रिया आदि।

8. **चिड़चिड़ा झगड़ालू** - ***एस्कुलस, एन्टिम-क्रूड,*** क्रोकस, काली-फास, ***इग्नेशिया, कैमोमिला, लाइकोपोडियम, नक्स वामिका, स्टेफिसेग्रिया*** आदि।

9. **संदेहशील** - ***आर्सेनिक, लैकेसिस,*** पल्सेटिल्ला, रस-टाक्स, सल्फर आदि।

अनेक प्रकार के मनोरोगों, जैसे - क्रूर, अहंकारी, घृणा करने अथवा भूलने का स्वभाव, जीवन से विरक्ति, विषन्नता (उदासीपन-Depression), प्रलाप (Delirium), निर्लज्ज, रोने अथवा अनावश्यक हँसने का स्वभाव, मूर्खता (क्षीण बुद्धि), चूहों, भूतों, कीड़ों तथा काले कुत्ते से भय, ***'पति-पत्नी के बीच की कलह', शराब, कॉफी, चाय तथा नशीले पदार्थ सेवन करने की तीव्र इच्छा, मृत्यु की इच्छा, चिन्ता, भयानक स्वप्न देखना, बहुत बोलना अथवा चुप रहना गाली-गलौज बकना अथवा धार्मिक उन्माद आदि*** को समझने व उनके निराकरण हेतु होम्योपैथी विज्ञान का भेषज लक्षण संग्रह बहुत गहरायी से अध्ययन करने के पश्चात् ही उपरोक्त औषधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए। ***होम्योपैथी के मत से किसी भी चर्म रोग पर कोई भी शक्तिशाली मरहम लगाने का निषेध है, क्योंकि प्रकृति शरीर की गंदगी को चर्म रोग के माध्यम से बाहर फेंक देना चाहती है। इस प्रकार प्राकृतिक प्रक्रिया में बाधा पड़ने से रोग शरीर के भीतर घुस कर कोमल अंगों, जैसे - हृदय, गुर्दा, फेफड़े, जिगर, आँतों आदि पर आक्रमण कर सकता है, अतः घातक हो सकता है।***

वस्तुतः मानव की जैसी प्रवृत्ति होती है, जैसे - काम, क्रोध, लोभ, करुणा, दया, प्रेम आदि, इन्हीं भावनाओं के अनुरूप ही उसके शरीर में हॉरमोन का स्राव होता है। जिस हॉरमोन के स्राव की प्रधानता होती है, उसी के अनुसार मानव कर्म करता है और पाप कर्म के कारण शरीर में मनोरोगों एवम् उसी के अनुरूप भौतिक रोगों का विकास हो जाता है। मन और शरीर एक-दूसरे से बहुत गहरायी से जुड़े हुए हैं। कामेच्छा के बढ़े होने पर फासफोरस, म्यूरैक्स तथा ऑरगेनम आदि औषधियाँ उपयोगी हैं। इस पूरी प्रक्रिया पर आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन किया जाना चाहिए। होम्यो औषधियाँ सूक्ष्मीकरण के द्वारा शक्ति (Energy) रूपा बन जाती हैं, अतएव वे मानव के मन, बुद्धि तथा चित्त तक पहुँच कर अवचेतन मन में एकत्रित पाप तरंगों को नष्ट कर सकने की क्षमता रखती हैं, अतः मनोरोगों का नाश हो जाता है, फलतः भौतिक रोगों का समूल नाश

हो जाता है। ***समस्या मात्र सही दवा चुनने की होती है, जो रोग के लक्षणों की सम्पूर्णता की समझ अर्थात् रोगी की 'प्रवृत्ति' पर आधारित होती है, अतएव अति दुष्कर कार्य है। यदि होम्योपैथी का ज्ञान आम नागरिक तक पहुँच जाये, तो अनेक अपराध, जैसे - हत्यायें, आत्महत्याएं, बलात्कार, हिंसा आदि की घटनाओं में कमी आ सकती है तथा पागलखानों में बन्द अधिकांश पागल सामान्य नागरिक का जीवन जी सकते हैं। अनेक गृहस्थी आज जो विवाह-विच्छेद (Divorce) कर रहे हैं, उनमें काफी कमी आ सकती है,*** क्योंकि इस ज्ञान से अनेक मनोरोग ठीक हो सकते हैं।

चेतावनी :- यथासंभव 30 तथा 200 शक्ति की दवाओं का प्रयोग करके ही रोगों का उपचार करना चाहिए। 1000 शक्ति, विशेषकर 10000 शक्ति तथा इस से ऊपर की शक्ति वाली दवाओं का प्रयोग तब तक नहीं करना चाहिए, जब तक कि रोग बहुत पुराना (chronic) न हो तथा मानसिक लक्षण पूरी तरह से न मिलते हों, क्योंकि गहराई तक प्रभाव रखने वाली औषधियों से औषिधि-रोग (drug disease) हो सकता है, जो जीवन में अति कष्टकारक बन सकता है।

(D) **आदर्श समाधान** :- वस्तुतः मानव मन की सम स्थिति बनी रहे और उपरोक्त ***विभिन्न जीवन रसों के स्राव का संतुलन विषम न हो पाये, धर्म शिक्षा का यही सार है, क्योंकि संतुलन विषम होते ही तमाम रोगों का सूत्रपात होने लगता है, यहाँ तक कि वह अनेक प्रकार के मनोरोगों, जैसे - बलात्कार, हत्या, लूटपाट, आत्महत्या आदि अपराधों में अनायास ही प्रवृत्त हो जाता है।*** आज के मनोवैज्ञानिक भी इस प्रकार की अपराधिक प्रवृत्तियों को मनोरोग मानने लगे हैं। इन मनोरोगों के परिणाम भयानक तथा अति दूरगामी होते हैं। ***इस जन्म में ही उनका भोग समाप्त नहीं हो पाता, अपितु कर्मफल भोग का क्रम जन्मों-जन्मों तक चलता है। धर्म को ठीक से समझने का अर्थ है कर्मों के रहस्य[a] को समझना, क्योंकि कर्म की गति को समझना बहुत ही कठिन है।*** भारतीय मनीषियों का कथन है, कि यह संसार विविध प्रकार के मनोरोगियों का संग्रहालय (Museum) है तथा इन मनोरोगियों के उपचार के लिए यह संसार एक विशालतम उपचार गृह है, ***अतएव हर प्रकार के मनोरोगों के उपचार का अर्थ है मानव मन को संतुलित अवस्था में बनाए रखना।***

वैदिक साधना पक्ष भगवान शिव (शव+इव=शव जैसे व्यवहार करने) के प्रतीक पर ध्यान एकाग्र करने तथा ***'ॐ नमः शिवाय'*** मंत्र के जप करने का मार्ग बतलाता है, जो पूर्ण वैज्ञानिक मार्ग है। शिव के मंत्र का जप करने का अर्थ है, कि साधक को बाह्य जगत से प्राप्त किसी भी घटना के प्रति मन का भाव सम बनाए रखना है अर्थात् जप करते समय अपने आपको 'स्व-संकेत' (Auto Suggestion) देना चाहिए कि मैं बाह्य सम्वेदनाओं के प्रति सजग रहकर समभाव बनाए रखूँगा।

ॐ नमः शिवाय मंत्र के अक्षरों का स्रोत मानव की सुषुम्ना पर स्थित निम्नांकित चक्र हैं।

---

a ***गहना कर्मणो गतिः।*** *(गीता-4/17)*

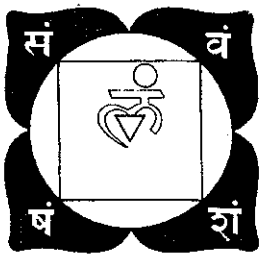

मूलाधार चक्र

स्वाधिष्ठान चक्र

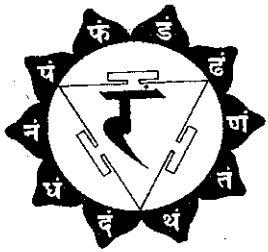

मणिपुर चक्र

अनहद चक्र

विशुद्धि चक्र

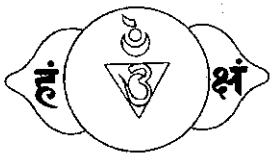

आज्ञा चक्र

चित्र : 9.05

चक्र का नाम	अक्षर का नाम	चक्र का नाम	अक्षर का नाम
मूलाधार	व, श	अनहद	य
स्वाधिष्ठान	य, म	विशुद्धि	ह
मणिपुर	न	आज्ञा	ह, ॐ

उक्त मंत्र का श्वॉस के साथ जप करने से श्वॉस एवम् मंत्र के साथ चेतना एकाकार हो जाती है, जिससे ऊर्ध्व चक्रों की जाग्रति होती है और कुंडलिनी का ऊर्ध्वगमन होकर वह आज्ञा चक्र तक पहुँच जाती है। *(साधक को मन ही मन ऐसा स्व-संकेत देना होता है, कि कुंडलिनी अपने चारों पंखुड़ियों सहित सुषुम्ना के मार्ग पर ऊर्ध्व गमन कर रही है, तब यह कार्य लम्बे अभ्यास के पश्चात् शनैः शनैः पूर्ण होता है)* तत्पश्चात् मानव के अन्तर्मन में विवेक जाग्रत

---

a चक्रों के चित्र पृष्ठ संख्या 91 से 96 तक—पुस्तक "Meditation and Mantra"-लेखक स्वा० विष्णु देवानन्द : अरुण प्रिंटिंग प्रैस, नई दिल्ली से लिए गये हैं।

होने लगता है, फलतः काम, क्रोध एवम् लोभ आदि मनोद्वेगों पर नियंत्रण स्थापित हो जाता है, जिससे साधक अपने मन को सम अवस्था में स्थापित कर पाता है अर्थात् तब वह शव की भाँति व्यवहार करने में सक्षम हो जाता है। परिणामस्वरूप नवीन संस्कारों का लेखन तथा संचय होना रुक जाता है और पूर्वकाल में किये गये कर्मों (संस्कारों) का भोग समाप्त होते ही साधक सदा के लिए जन्म-मरण का चक्र तोड़कर अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है।

18. दान का महत्त्व :- सम्पूर्ण सृष्टि में आकाशगंगाओं से लेकर उद्भिज जगत तक में दान देने की प्रवृत्ति देखी जाती है। आकाशगंगाएं ऊर्जा कणों की वर्षा द्वारा ***सूर्य, चन्द्र*** - प्रकाश, गर्मी व शीतलता बिखेर कर, ***वृक्ष*** - फल, फूल तथा छाया देकर, ***नदियाँ*** - शीतल व सुस्वाद जल प्रदान करके, ***पर्वत*** - वन सम्पदा तथा वर्षा का कारण बनकर, ***पृथ्वी*** - प्राणी जगत के लिए भोजन की आपूर्ति करके तथा सबको धारण करके मानव को ***'निष्काम भाव'*** [a] से निरन्तर 'दानशीलता' (त्याग) की शिक्षा दे रहे हैं। ***अतएव जो मानव अपने जीवन में इस ईश्वरीय विधान-'त्याग' को धारण किए रहता है, वह सही अर्थों में धर्म का पालन करने वाला है तथा संतों के गुणों वाला है।***

श्रीरामचरितमानस में यही बात कही गयी है -

संत बिटप सरिता गिरि धरनी, परहित हेतु सबन्ह कै करनी। [b]

अर्थ :- संत, वृक्ष, नदियाँ, पर्वत, पृथ्वी, ये सभी सदैव दूसरों की भलाई में रत रहते हैं।

समाज में आर्थिक रूप से ***'विपन्न-वर्ग'*** को शिक्षा, रोटी, कपड़ा तथा मकान की सहायता करके ***'सम्पन्न-वर्ग'*** मात्र उस वर्ग को लाभान्वित ही नहीं करता, अपितु इस ***'दानशीलता'*** के दैवीय गुण को धारण करके अपना महान कल्याण भी करता है।

श्री रामचरितमानस में कहा गया है, कि -

दो० - ***प्रगट चारि पद धरम के, कलि महुँ एक प्रधान।***
येन केन बिधि दीन्हे, दान करइ कल्यान।। [c]

अर्थ :- धर्म के चार चरण (सत्य, तप, यज्ञ तथा दान) होते हैं, उनमें से चौथा चरण 'दान' कलियुग में विशेष रूप से प्रकट है अर्थात् विशेष महत्त्व का है, अतएव जिस किसी प्रकार से हो दान देने से मनुष्य का अवश्य ही कल्याण होता है।

श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं -

एवम् प्रवर्तितं चक्रं, नानुवर्तयतीह यः। अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति [d] ।।

भावार्थ :- जो पुरुष प्रकृति के परम्परा से प्रचलित सृष्टि चक्र के अनुकूल नहीं चलता अर्थात् दानशीलता के नियम का पालन नहीं करता, ऐसे पापात्मा का इस पृथ्वी पर जीवन वृथा है।

---

a 'निष्काम भाव' से दानशीलता का अर्थ है, कि बदले में कुछ भी लिए बिना सदैव प्राणी मात्र के हित में रत रहना। इसी प्राकृतिक नियम से प्रेरणा पाकर त्याग (दान) को भारतीय संस्कृति का आधार बनाया गया है।

b उत्तरकाण्ड दो. 124-125 के मध्य *c* उत्तरकाण्ड दो. 103

d गीता-3/16

धन की तीन ही गतियाँ होती हैं - *1.* **स्वयम् द्वारा उपभोग** *2.* ***सुपात्र को दान*** *3.* ***विनाश।*** अतएव जो धनवान होते हुए भी दान नहीं करते, उनका धन कुपुत्र द्वारा एशोआराम में या बीमारी में नष्ट हो जाता है अथवा चोर-डाकुओं द्वारा एवम् राज्य द्वारा छीन लिया जाता है। बहुधा कृपण व्यक्तियों को वृद्धावस्था में भूलने की बीमारी (Dimentia) हो जाया करती है। यह बड़ी ही खतरनाक बीमारी है तथा दान करने की प्रवृत्ति इस बीमारी में लाभकारी हो सकती है।

कर्म का सिद्धान्त है, कि जो बोया जायेगा, वह कई गुना होकर दानकर्त्ता को अवश्य ही प्राप्त होगा। भारतीय शास्त्रों में शिक्षा, भोजन, वस्त्र, मकान, औषधि, फल-फूल, अन्न आदि सुपात्र को दान करने का विधान है। पर्वों, उत्सवों एवम् व्रतों के माध्यम से इस प्रकार की दान करने की परम्परा बनायी गयी है। आयुर्वेद शास्त्र में बतलाया गया है, कि औषधि के साथ-साथ दान, रोग मुक्ति में सहायक है।

साधारणतया मानव अपने जीवनकाल में बुद्धिबल से तथा मेहनत से विपुल सम्पत्ति का अर्जन करता है और अनेक बन्धु-बान्धवों से सम्बन्ध बनाता है, परिणामस्वरूप उन सबके प्रति उसे अत्यन्त लगाव (मोह) हो जाता है। मृत्यु के समय अपनी विपुल सम्पत्ति तथा नाते रिश्तेदारों से बिछुड़ते हुए वह मानव अत्यधिक छटपटाता है और उसकी जीवात्मा पृथ्वीलोक को छोड़ना नहीं चाहती। ऐसे समय में मोह के कारण छटपटाते मानव से ***'गो (पृथ्वी)'*** दान कराने की वैदिक परम्परा है, अर्थात् उन सबके प्रति मोह त्याग का संकल्प करवाया जाता है। बहुधा देखा जाता है, कि तब वह व्याकुल जीवात्मा देह से शीघ्र मुक्त हो जाती है।

इसी प्रकार विवाह के समय वधू के माता-पिता वर को अपनी कन्या का दान करते हैं। इस दान का भाव यह है, कि जिस पुत्री को एक लम्बी अवधि तक पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया अथवा संस्कार दिए, उसके बिछुड़ने पर दम्पति को मोह के कारण दुःखी होना स्वाभाविक है, अतः वे दम्पति उस मोह को सार्वजनिक रूप से त्याग करने का संकल्प प्रकट करते हैं। इस संकल्प का सार्वजनिक रूप से प्रकट करने का एक अर्थ यह भी होता है, कि इस कन्या के रक्षण एवम् भरण-पोषण का दायित्व अब से **'वर-पक्ष'** का होगा तथा **'वधू-पक्ष'** कन्या के सम्बन्ध में मोहवश हस्तक्षेप नहीं करेगा। इस प्रकार वे दम्पति अनेक लोगों के समक्ष अपने संकल्प को दोहरा-दोहरा कर अपने अवचेतन मन को स्व-संकेत [a] (Auto-Suggestion) भेजते हैं तथा अपने मोह के संस्कार का त्याग करने का प्रयास करते हैं। इस सामाजिक भाव के अतिरिक्त कन्या-दान का एक दैवीय भाव भी है, कि विवाह के पश्चात् वधू जब वर के सहयोग से संतान सृजन का कार्य करती है, तो वे दम्पति इस कन्या दान द्वारा सृष्टि सृजन प्रक्रिया में स्वाभाविक रूप से सहायक बनते हैं, अतएव वैदिक परम्परा में इसे एक धार्मिक कृत्य माना गया है।

---

a स्व-संकेत (Auto-Suggestion) का अर्थ है - किसी भी विचार को (शान्त मन से) बारम्बार दोहरा कर अवचेतन मन तक पहुँचाना। अवचेतन मन में सृजनात्मक शक्ति निवास करती है, यदि विचार के पीछे दृढ़ संकल्प हो, तो उस विचार के अनुरूप सृजन हो जाता है संकल्प की दृढ़ता, विचार को दोहराने से तथा मन की एकाग्रता से निर्मित होती है। हमारी कोई भी मनोकामना की पूर्ति की पृष्ठभूमि में यही प्रक्रिया कार्य करती है।

द्वार पर आए हुए भिखारी और कुत्ते को अन्न का दान देने से सुफल होता है। गरीबों को अन्न, वस्त्र एवम् शिक्षा का दान अवश्य करना चाहिए। इन सब में नारायण का भाव रखकर इन्हें दान देने से ईश्वर की निकटता शीघ्र प्राप्त होती है। ऐसा न करने पर कर्म के सिद्धान्त (जो बोओगे, वो पाओगे) के अनुसार किसी जन्म में हमें भी ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ सकता है। इसीलिए कवि ने कहा है -

तुलसी आ संसार में सबसे मिलिए धाय, ना मालूम किस भेष में नारायण मिल जाय।

19. मानवधर्म की रक्षा :- यज्ञोपवीत संस्कार द्वारा प्रत्येक भारतीय को तीन व्रत धारण करवाये जाने का विधान है। उन तीन व्रतों में ***'मानव-धर्म'*** [a] की रक्षा करना तथा उसको युगानुकूल भाषा में आगामी पीढ़ी तक पहुँचाना प्रत्येक मानव का मुख्य कर्त्तव्य है। व्यक्ति के अतिरिक्त राजा (वर्तमान युग में राज्य) के चार कर्त्तव्यों में भी यह कर्त्तव्य शामिल है। ***राज्य के चार कर्त्तव्य निम्न प्रकार से हैं -***

(i) **गो :-** गो का अर्थ भूमि भी होता है। जिस भूमि पर राज्य के नागरिक निवास करते हैं, उस भूमि की हर कीमत पर रक्षा करना राज्य का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है, ताकि उस पर निवास करने वाले प्राकृतिक धर्म एवम् संस्कृति के अनुयायी सुरक्षित रह सकें और वे सुख तथा शान्तिपूर्वक अपने चारों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) का जीवन में उपार्जन कर सकें। प्राचीन काल में राजाओं द्वारा इस कर्त्तव्य के निर्वहन करने के कारण ही उन्हें भूमिपाल, महिपाल, क्षेत्रपाल, पृथ्वीपाल आदि नामों से सम्बोधित किया जाता था।

(ii) **वेद :-** वेद ईश्वरीय ज्ञान के असीम भण्डार हैं। इस भण्डार में प्रकृति के शाश्वत सिद्धान्तों [b] का संग्रह है, जो सार्वभौमिक, सार्वजनीन, तथा सार्वकालिक हैं। इन श्रेष्ठतम विचारों का राज्य द्वारा प्रचार-प्रसार करके उनके संरक्षण किये जाने की परम्परा रही है। इस परम्परा का निर्वहन किया जाना चाहिए।

(iii) **ब्राह्मण :-** वेद के ज्ञान के अन्वेषक, व्याख्याकार एवम् प्रचारक (ब्राह्मणों) का संरक्षण परमावश्यक है, ताकि प्रकृति के शाश्वत सत्य पृथ्वीवासियों को सदैव लाभान्वित करते रहें। इन ब्राह्मणों के भरण-पोषण तथा शोध कार्यों पर होने वाले धन का प्रबन्ध राज्य की ओर से होना कर्त्तव्य है।

(iv) **राष्ट्र :-** राज्य में रह रही प्रजा, जो प्रकृति के नियमों का अनुसरण करती है, उसकी सुरक्षा का पूरा दायित्व राज्य का है। राज्य का कर्त्तव्य है, कि प्रजा की अपने पुत्र के समान पालना करे, तभी मानव समाज में चारों ओर सुख एवम् शान्ति रह सकती है।

श्रीरामचरितमानस में कथा आती हैं, कि रावण के आतंक से भयभीत पृथ्वी ने ***'धेनु (गाय)'*** का रूप धारण करके ब्रह्मा तथा विष्णु से संरक्षण हेतु पुकार की, तब भगवान विष्णु ने अवतार धारण करने का आश्वासन दिया। तत्पश्चात् भारत के चार विश्वविद्यालयों (आश्रमों) के कुलपतियों (ब्रह्मर्षियों), बाल्मीकि (केन्द्रीय भारत से), विश्वामित्र (उत्तर भारत से), भारद्वाज

---

a ***द्वितीय सत्र*** में 'मानव धर्म' की विशद व्याख्या की गयी है तथा ***षष्ठ सत्र*** में 'धर्म एवम् मजहब में अन्तर' स्पष्ट किया गया है।

b इन सिद्धान्तों का विवरण इसी सत्र के अनुच्छेद-नौ में दिया गया है।

(प्रयागराज से) तथा अगस्त (दक्षिण भारत से) ने ऋषि वशिष्ठ (राजा दशरथ के राजगुरु) से मिलकर मंत्रणा की और श्रृंगी ऋषि द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया तथा ***'राम'*** जैसे महामानव का पृथ्वी पर अवतरण कराया। *(उपरोक्त कथा का ऋषियों द्वारा मंत्रणा किये जाने वाला भाग रामचरितमानस में गुप्त है)*

श्रीराम तथा श्री लक्ष्मण को ऋषि विश्वामित्र ने धनुर्विद्या का प्रशिक्षण दिया तथा श्रीराम व श्री लक्ष्मण ने अपनी धनुर्विद्या का कौशल आततायी ताड़का तथा सुबाहु को मार कर प्रदर्शित किया। *(रामचरितमानस में कथा का यह भाग उलट कर वर्णन किया गया है)*

उपरोक्त पाँचों ऋषियों ने ऋषि बाल्मीकि जी की अध्यक्षता में राजा दशरथ से गुप्त रखते हुए रानी कैकेयी तथा राम के साथ मंत्रणा की तथा श्रीराम को चौदह वर्ष के लिए वन गमन की योजना बनायी। योजनानुसार कार्यक्रम के प्रथम चरण का क्रियान्वयन ऋषि वशिष्ठ से प्रारम्भ हुआ, जब राजा दशरथ के पूछने पर ऋषि ने राम के युवराज होने की शुभ तिथि पर गोलमोल उत्तर [a] दिया। दूसरे चरण का क्रियान्वयन तब हुआ जब रानी कैकेयी ने राजा दशरथ से वरदान माँग लेने के पश्चात् श्रीराम को अपने द्वारा किए गये सारे अभिनय को कह सुनाया। इस सारी घटना को सुनने के पश्चात् श्रीराम मन ही मन मुसकराये [b]। श्रीराम ने भी वन में जाने के प्रस्ताव को मुनियों से मिलन जैसा सुखद कृत्य बतलाकर इसे न्याय संगत ठहराया। तत्पश्चात् तीसरे चरण का क्रियान्वयन ऋषि भारद्वाज के मिलन पर हुआ। ऋषि इस चरण की सफलता से अति प्रसन्न [c] हुए तथा चुप रहे। ऋषि बाल्मीकि से मिलने पर श्रीराम ने माता कैकेयी द्वारा किए गए पूरे अभिनय का विस्तृत ब्यौरा सुना दिया [d]। इसके उपरान्त सोची-समझी रणनीति के अनुसार ऋषि बाल्मीकि जी ने श्रीराम को चित्रकूट वन में निवास करने की आज्ञा [e] दी, जहाँ पर भरत-राम मिलन हुआ। योजना के आगामी चरण में श्रीराम मुनियों से मिलते-मिलाते ऋषि अगस्त के आश्रम पहुँचे। ऋषि अगस्त ने श्रीराम को दण्डक वन [f] में निवास करने का परामर्श दिया, जहाँ शूर्पनखा के माध्यम से रावण को चुनौती भेजी गयी। खर, दूषण तथा त्रिसिरा समेत चौदह सहस्र राक्षसों का वध हुआ और सीता हरण के पश्चात् सुग्रीव मैत्री, सीता की खोज, लंका दहन तथा विभीषण मिलन आदि कार्यक्रम योजनानुसार पूरे हुए।

---

a दो० - ***सुदिन सुमंगल तबहिं जब रामु होहिं जुवराज।*** *(अयोध्याकाण्ड दो0 4)*

b चौ० - ***मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनन्द निधानू।।*** *(अयोध्याकाण्ड दो0 40-41 के मध्य)*

दो० - ***मुनिगन मिलनु विसेषि बन। सबहिं भाँति हित मोर।।***
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, सम्मत जननी तोर।। *(अयोध्याकाण्ड दो0 41)*

c चौ० - ***मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानन्द राशि जनु पाई।।*** *(अयोध्याकाण्ड दो0 105-106 के मध्य)*

d चौ० - ***अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी।।*** *(अयोध्याकाण्ड दो0 124-125 के मध्य)*

e चौ० - ***चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू।।*** *(अयोध्याकाण्ड दो0 131-132 के मध्य)*

f चौ० - ***दण्डक वन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिवर कर हरहू।।*** *(अरण्यकाण्ड दो0 12-13 के मध्य)*

ऋषि अगस्त से श्रीराम को, रावण को मारने का शस्त्र [a] तथा उसकी मृत्यु के समय का ज्ञान मिला। यद्यपि श्री हनुमान, श्री अंगद, मन्दोदरी, विभीषण तथा कुम्भकरण आदि ने रावण को बहुत समझाया, परन्तु वैदिक धर्म एवम् संस्कृति के विपरीत चलने की अपनी हठ से वह नहीं टला, इस प्रकार विधर्मी रावण से शान्तिवार्त्ता द्वारा वैदिक धर्म की स्थापना के सभी प्रयास विफल हुए। ***अन्ततः रावण उपरोक्त महर्षियों के बुद्धिबल से मारा गया।***

इसी प्रकार दुर्योधन से भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयम् शान्तिदूत बनकर मात्र पाँच ग्राम पाँडवों के लिए माँगे, वह भी दुर्योधन ने ठुकरा दिया। अन्त में श्रीकृष्ण के मार्गदर्शन पर पाण्डवों को धर्म की स्थापना हेतु द्रोणाचार्य तथा भीष्मपितामह जैसे योद्धाओं का भी वध करना पड़ा।

दोनों अवतारों [b] ने उपरोक्त दोनों उदाहरण, हमारे समक्ष रखे हैं और यह संदेश दिया है, कि जब अहिंसा व शान्ति के सारे मार्ग बन्द हो जायें, तब धर्म की स्थापना हेतु हिंसा का आश्रय लेना भी धर्म की पालना ही है। कहने का सार यह है, कि ***धर्म की स्थापना [c], पालना तथा प्रचार-प्रसार करना हर मानव तथा हर राज्य का सर्वोच्च कर्त्तव्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति में समकालीन गुरुओं की सबसे अहम भूमिका रही है। वे ही 'राम' जैसे महामानव का पृथ्वी पर अवतरण कराके धर्म रक्षा का मार्ग प्रशस्त करते रहे हैं। उन्हीं से प्रेरणा लेकर गुरु गोविन्द सिंह एवम् गुरु समर्थ रामदास ने धर्म की समयानुसार पुनर्व्याख्या कर क्षात्र शक्ति का विकास किया तथा धर्म को अक्षुण्ण रखा।***

केन्द्रीय सत्ता द्वारा संचालित विचारधारा ही विश्व में प्रभावी होती है, भले ही वह सार्वकालिक न भी हो। क्योंकि सामयिक एवम् क्षेत्रीय समस्याओं के समाधान हेतु बनाए गये नियम सार्वकालिक एवम् सार्वजनीन नहीं हो पाते, ***अतः उन सामयिक सुधारों में निहित मूल भावना की समयानुसार पुनर्व्याख्या आवश्यक हो जाती है, अन्यथा रूढ़िवादिता के कारण समाज हिंसा के मार्ग तक को अपना लेता है। वैदिक समाज से आज केन्द्रीय सत्ता का लोप हो गया है, वह अनेक टुकड़ों एवम् विचारधाराओं में***

---

a चौ०- ***अब सो मंत्र देहु प्रभु मोंही। जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही।।*** *(अरण्यकाण्ड दो0 12-13 के मध्य)*

b चौ0 - ***जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।***
करहिं अनीति जाइ नहि बरनी। सौदिहिं विप्र धेनुसुर धरनी।।
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।। *(बालकाण्ड दो0 120-121 के मध्य)*

दो0 - ***असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु।***
जग विस्तारहिं विसद जसु, राम जन्म कर हेतु।। *(बालकाण्ड दो0 121)*
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। *(गीता-4/7)*
परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। *(गीता-4/8)*

c 'धर्म' जिन प्राकृतिक सिद्धान्तों पर आधारित है, उसका वर्णन इसी सत्र के अनुच्छेद-नौ में किया गया है।

बँटा हुआ है, इसीलिए धर्म के तत्त्व को सम्पूर्णता से जानते हुए भी पिछड़ता जा रहा है। प्राचीन काल जैसी आश्रम व्यवस्था तथा अनुशासनात्मक संस्था [a] की स्थापना से ही मानव धर्म की पुनर्स्थापना सम्भव है।

20. ज्योतिष एवम् होम्योपैथी :- ***सृष्टि रचना का आधार 'प्रवृत्ति' है।*** प्रवृत्ति का प्रथम प्रसार मनु (आकाशगंगा की परिक्रमा) से प्रारम्भ होता है। पूरे ब्रह्माण्ड में निवास करने वाले प्राणियों की प्रवृत्ति का मूल स्रोत हमारी अपनी आकाशगंगा है। यह प्रवृत्ति अर्थात् आवृत्ति (frequency) विद्युत तरंगों के रूप में आकाशगंगा से नीचे नक्षत्रों, राशियों, सूर्यों, ग्रहों तथा चन्द्रमा के माध्यम से जहाँ भी प्राणियों का सृजन हुआ है, उन तक पहुँचती है। मनु की गति से प्राणियों की सोच (प्रवृत्तियों) में सतत् परिवर्तन होता रहता है। ज्योतिष विशेषकर फलित ज्योतिष की व्याख्या करना अति कठिन कार्य है, क्योंकि सभी ज्योतिर्पिण्डों का एकत्रित प्रभाव समझ कर अनुमान भर लगाया जाता है। सौ फीसदी भावी घटनाओं की सत्यता की पुष्टि नहीं हो पाती, क्योंकि सभी ज्योतिर्पिण्डों के संयुक्त प्रभाव को बिल्कुल बारीकी से समझ पाना किसी भी ज्योतिषी के लिए लगभग असम्भव है। सामान्यतया अधिकांश में फलित ज्योतिष में भावी घटनाओं की ऐसी सम्भावना है अथवा इस-इस घटना का योग है बस, ऐसा भर कहा जा सकता है। वह घटना अवश्य घटेगी ऐसा नहीं कहा जा सकता, यद्यपि भारतीय ज्योतिषियों ने इस क्षेत्र में बहुत आश्चर्यजनक खोजें की हैं। भृगुसंहिता जैसे ग्रंथ को पढ़कर तो दाँतों तले उँगली दबानी पड़ जाती है। भृगु ऋषि ने सहस्रों वर्ष पूर्व परावर्ती काल के करोड़ों-करोड़ों मानवों का भविष्यफल इस संहिता में लिख दिया है, जो उन ऋषि द्वारा की गयी ध्यान साधना का चमत्कार है।

इसी के समानान्तर होम्योपैथी के भेषज लक्षण संग्रह (Materia Medica) में तमाम प्रकार के रोगियों की प्रवृत्तियों का बखान है, तथा रोगी की सही प्रवृत्तिमूलक औषधि का खोज पाना एक अति क्लिष्ट कार्य है। काम, क्रोध, लोभ आदि भावनाओं के प्रवाह से मानव मन उद्वेलित होता है जिससे 'Psora नामक प्रथम **'धातु दोष' (रोग बीज)** की उत्पत्ति होती है। इसे होम्योपैथी विज्ञान में 'Miasm' कहा गया है। इसी रोग बीज से आगे सामान्य रोगों से लेकर अनेक प्रकार के रतिज (Sexual) रोगों तक के **'रोगबीज'** अवचेतन मन में आरोपित हो जाते हैं। रात्रिकालीन अति व्यभिचार से **'सिफलिस' (Syphilis)** रोगों की प्रवृत्ति वाले रोग तथा दिन में किये गए यौनाचार से **'साइकोसिस' (Sycosis)** प्रवृत्ति वाले **'धातु-दोषों' (रोग बीजों)** का बीजारोपण होता है। फिर इन **'रोग-बीजों'** के जोड़-तोड़ की गणित (Permutation & Combination) द्वारा अनगिनत रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। होम्योपैथी उपरोक्त तीन प्रकार के **'धातु-दोषों'** (Psora, Syphilis & Sycosis) को सभी प्रकार के रोगों का मूल कारण मानती है। जब तक समुचित होम्यो दवा के द्वारा इन तीनों प्रकार के **'धातु-दोषों'** (Miasms) को नष्ट नहीं कर दिया जाता, तब तक मानव, जीवनभर किसी-न-किसी बीमारी से कष्ट पाता ही रहता है, इस दृष्टि से आधुनिक विज्ञान द्वारा विस्तृत अध्ययन किया जाना चाहिए।

---

a इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी हेतु *'वैदिक शासन व्यवस्था-ऋषि तन्त्र'* नामक लेख पुस्तक के भाग-3 में संलग्न है।

कहने का तात्पर्य यह है, कि जिस प्रकार फलित ज्योतिष विज्ञान एक अति क्लिष्ट विज्ञान है, उसी प्रकार से होम्योपैथी विज्ञान भी अति क्लिष्ट है। इन दोनों विज्ञानों का आधार ***'प्रवृत्ति' (tendency)*** है, जो अति सूक्ष्म तत्त्व है, क्योंकि सृष्टि निर्माण का आधार भी प्रवृत्ति (tendency) ही है।

21. ईश पूजा की सरल विधियाँ :- *बहुधा ऐसी टिप्पणी सुनने में आती है, कि सनातन धर्म में परमात्मा की पूजा करने की विधियाँ काफी कठिन हैं, यह सच नहीं है।* कुछ सरल विधियों का विवरण निम्न पंक्तियों में दिया जा रहा है।

(i) नींद खुलते ही सर्वप्रथम अपने दोनों हाथों को देखना, पृथ्वी वन्दन करना तत्पश्चात् स्नानादि करके सूर्य को अर्घ्य देना एवम् नियमपूर्वक मन्दिर में देव दर्शन करना *(ii)* शंकर जी का जलाभिषेक करना *(iii)* मंगल एवम् शनि को हनुमान जी को बूँदी का प्रसाद व सिंदूर चढ़ाना एवम् हनुमान चालीसा का पाठ करना *(iv)* प्रातः एवम् सायं इष्टदेव की आरती करना *(v)* चींटियों को आटा, चीनी आदि डालना एवम् गौ आदि पशुओं और पक्षियों को भोजन करवाना *(vi)* गरीबों की बस्ती में जाकर भूखों को भोजन करवाना, तब स्वयम् भोजन करना *(vii)* वृक्षों विशेषकर पीपल, केले व तुलसी को जल देना एवम् परिक्रमा करना *(viii)* सत्यनारायण का व्रत करना व कथा सुनना *(ix)* वर्ष में दो बार नवरात्र महोत्सव मनाना, देवी यज्ञ विधिपूर्वक करना एवम् भगवती जगदम्बे माँ का कीर्तन-भजन करना, रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, महाशिवरात्रि आदि पर्वों को धूमधाम से मनाना तथा तीर्थाटन करना इत्यादि, अनेक सरल उपाय हैं।

22. भक्ति मार्ग की एक कथा :- भेड़ें चराने वाला एक चरवाहा किसी आश्रम में रहता था। एक बार गुरुजी को आश्रम से बाहर जाना पड़ा। वे जाते हुए उस ग्वाले से कह गये, वत्स ! तुम भोजन करने से पूर्व भगवान को भोजन करवा कर, तब भोजन करना। अगले दिन ग्वाले ने भोजन की थाली भगवान के सामने प्रस्तुत की और लगा आग्रह करने, भगवन् ! भोजन कीजिए, पर कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं हुई। वह बैठा रहा, गिड़गिड़ाता रहा। सारा दिन व्यतीत हो गया, एक रात भी निकल गयी, परन्तु ग्वाला टस से मस न हुआ तथा आग्रह करता ही रहा। दो दिन और दो रातों के पश्चात् तो ग्वाले का धीरज टूट गया और लाठी उठाकर भगवान कृष्ण की मूर्ति से बोला - तू भी ग्वाला, मैं भी ग्वाला। अब खाता है या नहीं और यह कहकर मूर्ति पर लाठी का प्रहार कर दिया। भारी आघात लगने पर मूर्ति फटी और घोर शब्द हुआ तथा भगवान प्रकट हो गये। उसका हाथ पकड़ कर कहने लगे, अरे ! मैं आ गया, लाओ लाओ, अभी खाता हूँ। इस प्रकार भगवान, ग्वाले का दिया भोजन नित्य प्रति खाने लगे। गुरुजी के आने पर ग्वाले ने सारी सत्य घटना कह सुनायी। गुरुजी को विश्वास नहीं हो रहा था, परन्तु भोजन की थाली परोसने पर थाली का भोजन ग़ायब हो गया, तब गुरुजी ने भक्त से भगवान के दर्शन करवाने का निवेदन किया और भक्त के निवेदन पर गुरुजी को भगवान श्रीकृष्ण ने दर्शन दिए।

यह इतनी बड़ी घटना मात्र तीन दिन के उपवास अथवा लाठी मारने से नहीं घटी, बल्कि ग्वाले के द्वारा पूर्व जन्मों में की गयी साधना, ध्यान, पूजन, भजन के प्रभाव से इस जन्म में

उसका चित्त भगवान ने इतना निर्मल बना दिया था, कि मात्र तीन दिन की साधना से उसे अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हो गयी और गुरुजी तक को साथ में लाभ हो गया।

23. ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी सारांश की कथा :- किसी बहुत बड़े आश्रम में, जहाँ हज़ारों विद्यार्थी पढ़ते थे, विद्या समाप्ति के अवसर पर आचार्य ने विद्यार्थियों से कहा, कि आज तुम लोगों को मैं जीवन का अन्तिम उपदेश देने जा रहा हूँ। ध्यान से सुनो और समझो। आचार्य ने विद्यार्थियों में सबसे मेधावी छात्र को बुलाकर इस प्रकार कहा - वत्स ! तुम श्मशान स्थल पर जाओ और उस ओर मुख करके अनेकानेक वाक्यों से मृत जीवात्माओं की प्रशंसा करो, खूब गुण-गान करो और जो उनकी प्रतिक्रिया हो, वह ध्यान से सुनकर मुझे आकर बतलाओ। शिष्य ने यही किया। लौटकर गुरुजी को उसने बतलाया, कि जी भर के प्रशंसा के पश्चात् भी प्रतिउत्तर में कुछ भी नहीं सुनायी दिया। तब गुरुजी ने अगले दिन फिर शिष्य को यह कहकर भेजा, कि आज तुम खूब सारी गालियाँ देना और प्रतिक्रिया नोट करना। शिष्य ने ऐसा ही किया, परन्तु शिष्य ने लौटकर बतलाया, कि मृत जीवात्माओं की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं आयी।

तब गुरुजी ने सभी शिष्यों को सम्बोधित करते हुए, अपना अन्तिम उपदेश दिया -

वत्स ! अब तुम लोग अपने-अपने परिवारों में वापिस जाओ और जीवन को जिओ, परन्तु जीवन जीने की सही कला है, कि संसार की अच्छी व बुरी कोई भी घटना क्यों न हो, तुम्हारे मन को वह किसी प्रकार भी विचलित न कर सके अर्थात् सर्दी-गर्मी, लाभ-हानि अथवा मान-अपमान कुछ भी होता रहे, तुम्हारे मन पर किसी का कोई प्रभाव न हो। जिस प्रकार मृत शरीर गर्मी-सर्दी आदि के प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं करता, उसी प्रकार साधक को जलवायु के प्रभाव से भी विचलित नहीं होना चाहिए। ***ऐसा होने पर ही नए संस्कारों (सूचनाओं-स्मृतियों-प्रतिक्रियाओं) का लेखा-जोखा (रिकॉर्ड) तुम्हारे चित्तपटल पर नहीं बनेगा। अतएव जन्म-मृत्यु से छुटकारा पाने का एक मात्र यही रहस्य है, कि कोई भी नयी स्मृति तुम्हारे चित्त पर न लिखी जाए और पुरानी स्मृतियों का भोग समाप्त होते ही, तुम लोग 'मोक्ष' को प्राप्त हो जाओगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।*** सम्पूर्ण गीता और उपनिषदों का भी यही निचोड़ है। भगवान शिव (शव+इव) की पूजा-अर्चना अथवा मंत्र जाप करने का भी यही अर्थ है। भगवान शंकर भी नंगधड़ंग रहकर बर्फ के बीच बैठकर अर्थात् अति शीत के प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं करते। वे मान-अपमान के प्रति भी उदासीन रहते हैं अर्थात् कभी विचलित नहीं होते। गुरुजी ने पुनः समझाया, कि वत्स ! मानव चित्त एक ऐसा सूक्ष्मदर्शी अति सम्वेदनशील डिजिटल कैमरा है, कि जो भी कर्म किया जाता है, उसकी तत्काल एक वीडियो फिल्म तैयार हो जाती है और उस फिल्म के अनुरूप भावी जीवन जीना मानव की विवशता बन जाती है। ***आज जो भी जीवन जिया जा रहा है, उसकी फिल्म पूर्व में किए गये कर्मों के आधार पर तैयार हुई थी। इस प्रकार कर्मों का फल-भोग जन्म-जन्मान्तर तक चलता रहता है। अतएव वत्स ! सावधानीपूर्वक जीवन जीने का प्रयास करते रहना। तुम सब का कल्याण हो !***

23(a) मुक्ति एवम् मोक्ष का वैज्ञानिक विश्लेषण - एक परिकल्पना :-

"पिछले सभी सत्रों विशेषकर चतुर्थ सत्र में की गयी चर्चाओं से यह स्पष्ट है, कि दृश्यमान

प्रकाश (visible light) क्षेत्र भौतिक रूप से दिखलायी पड़ने वाली सृष्टि 10^{14} से लेकर 10^{15} आवृत्तियों (frequencies) प्रति सेकंड के मध्य स्थित है तथा पृथ्वी लोक के सभी वर्ग के प्राणी इन्हीं आवृत्तियों ***(frequencies) के मध्य स्पन्दन*** करते हुए अपने कर्म फलों का भोग करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, कि मानव का प्राणिक स्पन्दन स्तर (Electromagnetic vibration level) 10^{15} आवृत्ति के निकट है। (चतुर्थ सत्र के चित्र संख्या-4.05 का अवलोकन करें)

क्योंकि प्रत्येक ***छोटी-बड़ी*** इच्छा विशेष कर कामेच्छा से चुम्बक शक्ति का क्षय होता है अतएव जब वैदिक साधनाओं द्वारा मानव मन स्थिर हो जाता है, तो चुम्बकीय क्षेत्र अत्यधिक उच्च स्तर का हो जाता है तथा प्रकाशीय क्षेत्र शून्य अवस्था के निकट तक पहुँच जाता है, तब लगता है कि सभी प्रकार की ऊर्जाएं चुम्बकीय रूप लेकर सम्पूर्ण इच्छाओं को अपने में समाहित कर लेती हैं। इच्छाओं का अन्त होते ही मानव की समस्त क्रियाओं का भी अन्त हो जाता है। तत्पश्चात् जीवात्मा का जन्म-मरण का चक्र ठहर जाता है अर्थात् तब गति ठहर जाती है और सारी शक्ति पदार्थ (Mass) में परिवर्तित हो जाती है तथा ईश्वरीय विधान के अनुसार वह जीवात्मा जन्म तब लेती है, जब पृथ्वी लोक में प्राकृतिक धर्म की पुनर्स्थापना की आवश्यकता होती है। अर्थात् इस स्थिति में जीवात्मा सभी प्रकार की वासनाओं से मुक्त रहकर बैकुण्ठ में वास करती है। योग की भाषा में इसे सबीज समाधि की परिणति कहा जा सकता है। एक निर्विकल्प (निर्बीज) अवस्था भी होती है, तब जीवात्मा का सूक्ष्म शरीर भी समाप्त हो जाता है। अर्थात् वह सम (±) स्थिति को प्राप्त कर लेती है। परिणामस्वरूप वह शिव रूप बनकर सदैव के लिए आवागमन के चक्र को तोड़ देती है। यह सर्वोच्च स्थिति मोक्ष कहलाती है, जो अति दुर्लभ है, परन्तु मानव जीवन का लक्ष्य यही है। चित्र संख्या-9.06 द्वारा उपरोक्त स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

मुक्ति एवम् मोक्ष का वैज्ञानिक विश्लेषण

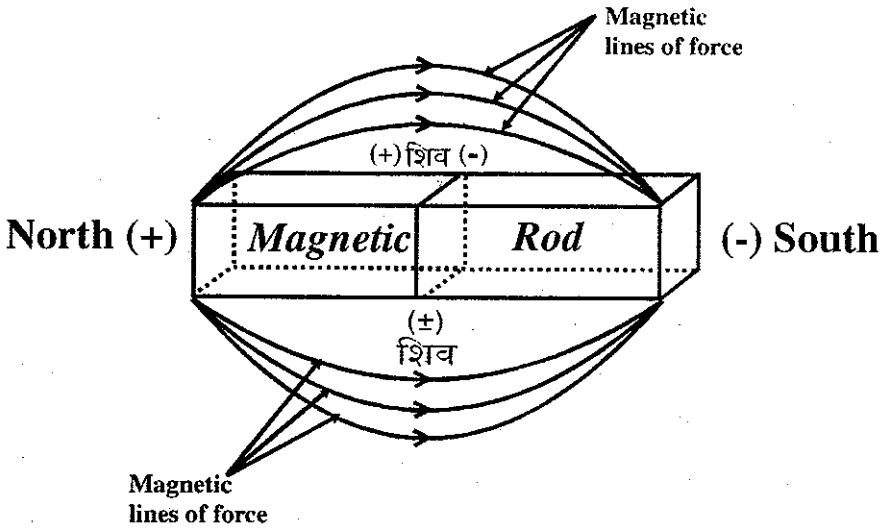

चित्र : 9.06

24. उपसंहार :-

(a) **दीक्षा/पञ्चकर्म/दैनिक सन्ध्या** [a] :- यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है, कि मानव का कोई भी उद्यम तभी पूर्ण होता है, जब वह अपने पूर्व जीवन अथवा वर्तमान जीवन में परमात्मा से गहराई से जुड़ा होता है। ईवश्र से जुड़ने का सरलतम उपाय है, नाम का जप तथा रूप का ध्यान एवं ईश्वर के गुणों का गान करना अर्थात् नियमित रूप से दैनिक सन्ध्या (पंचकर्म) द्वारा हर समय अपने अन्तर में ईश्वरीय भाव को जगाए रखना। इस प्रकार साधक को ईश्वर से शक्ति प्राप्त होती रहती है और उसका उद्यम इतिहास तक का निर्माण कर देता है।

इस सम्बन्ध में कुछ समय पूर्व का एक उदाहरण मोहनदास करमचंद गाँधी का दिया जा सकता है, जिन्होंने अपने अनेक वर्षों के सतत् उद्यम के साथ-साथ सामूहिक दैनिक भजन—***"रघुपति राघव राजा राम"*** के माध्यम से इतिहास रच दिया तथा भारत को राजनैतिक स्वतंत्रता दिलाने में सफलता प्राप्त की। फलस्वरूप कृतज्ञ राष्ट्र ने उन्हें ***'राष्ट्रपिता'*** का सम्मान दिया। उनका ईश्वरीय भाव इतना दृढ़ हो गया था, कि अंतिम श्वास लेते समय भी उनके मुख से ***'हे राम'*** शब्द ही निकला।

(b) **शरणागति :-*श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं :-***

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणम् व्रज, अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः [b] ।

अर्थ :- हे अर्जुन ! तुम अपने सभी धर्मों (कर्त्तव्यों) को भूलकर एक मात्र मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

भावार्थ :- शरणागति का अर्थ है, कि मानव पूर्ण रूप से तन, प्राण, मन, बुद्धि चित्त एवम् अपने अहम् भाव तक को ईश्वर चरणों में समर्पित कर दे।

(c) **मानव जीवन का लक्ष्य :-**

गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस में कहा है कि :-

चौ. :-*"देह धरे कर यह फल भाई, भजिय राम सब काम विहाई"* [c] ।

अर्थ :- हे भाई! (मानव) देह धारण करने का यही लक्ष्य (फल) है, कि सब कामों (कामनाओं) को त्याग कर, श्री रामजी का ही भजन किया जाये।

भावार्थ :- जीवन में हर मानव के अपने परिवार के प्रति, समाज के प्रति अनेक कर्त्तव्य होते हैं, परन्तु वे सभी कर्त्तव्य अन्त में अनेक बन्धनों (पापों) को जन्म देते हैं। इस प्रकार मानव जन्म-मरण के चक्र से कभी छूट ही नहीं पाता, अतएव पूरी तरह से भगवन्नाम का सहारा ही मानव को सभी क्लेशों से मुक्ति दिला सकता है।

---

a इस सम्बन्ध में तृतीय सत्र के अनुच्छेद 8(iii) के *"प्रमुख संस्कार"* शीर्षक के अंतर्गत विस्तार से बतलाया जा चुका है।

b श्रीमद्भगवद्गीता-18/66, c. किष्किंधाकाण्ड दो. 22-23 के मध्य

गोस्वामी तुलसीदास श्रीरामचरितमानस में फिर कहते हैं कि :-

दो. :- ***बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।***
बिनु हरि भजन न भव तरिअ, यह सिद्धान्त अपेल [a]॥

अर्थ :-जल को मथने से भले ही ***'घी'*** उत्पन्न हो जाए और बालू को पेरने से भले ही ***'तेल'*** निकल आवे, परन्तु श्री हरि के भजन के बिना संसार रूपी समुद्र अर्थात् मृत्यु के पार नहीं जाया जा सकता, यह सिद्धान्त अटल है।

25. अन्तिम प्रार्थना :-

इतना तो करना स्वामी, जब प्राण तन से निकलें।
गोविन्द नाम लेकर, फिर प्राण तन से निकलें।।
श्रीगंगा जी का तट हो, या जमुनाजी का घट हो।
मेरा साँवरा निकट हो, जब प्राण तन से निकलें।।
श्री वृन्दावन का थल हो, मेरे मुख में तुलसीदल हो।
विष्णु चरण का जल हो, जब प्राण तन से निकलें।।
वह साँवरा खड़ा हो, बन्शी का स्वर भरा हो।
तिरछा चरण धरा हो, जब प्राण तन से निकलें।।
सिर सोहता मुकुट हो, मुखड़े पर काली लट हो।
यही ध्यान मेरे घट हो, जब प्राण तन से निकलें।।
जब प्राण कण्ठ आवें, कोई रोग न सतावें।
यम दर्श न दिखावें, जब प्राण तन से निकलें।।
मेरा प्राण निकले सुख से, तेरा नाम निकले मुख से।
बच जाऊँ घोर दुःख से, जब प्राण तन से निकलें।।
उस वक्त जल्दी आना, नहीं श्याम भूल जाना।
बंशी की धुन सुनाना, जब प्राण तन से निकलें।।
इतना तो करना स्वामी, जब प्राण तन से निकलें।
गोविन्द नाम लेकर, फिर प्राण तन से निकलें।।

स्वर्गीया श्रीमती निर्मला देवी

सौजन्य से : स्वर्गीया श्रीमती निर्मला देवी
(22 अगस्त 1936 - 22 दिसम्बर 2005)

श्रीमती निर्मला देवी जी ने उपरोक्त भजन को चरितार्थ किया तथा इस मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी।

दैनिक संध्या, 'शरणागति-भाव', भगवन्नाम तथा सतत् भजन के अभ्यास से मानव में ईश्वरीय वृत्ति का निर्माण होता है। इस वृत्ति के दृढ़ होने से मानव की परमात्ममय प्रवृत्ति बनती है, जो मृत्यु के समय भावी योनि अथवा मोक्ष की निर्णायक होती है।

---

a उत्तर काण्ड दो. 122(क)

26. एक आशा :- आज पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित विश्व समाज में **'अर्थ-प्रधान-सोच'** के कारण अत्यधिक मानसिक अशान्ति बढ़ रही है, अतएव उस समाज के लोग भारतीय योग, ध्यान तथा समाधि की ओर आकर्षित हो रहे हैं। समय की गति को देखते हुए ऐसा लगता है, कि एक-न-एक दिन गैलेलियो जैसे साहसी वैज्ञानिक समाज द्वारा पूरे विश्व में धर्म पर खुले मस्तिष्क से मन्थन किया जायेगा और तब **'प्रकृति के सिद्धान्तों'** पर आधारित धर्म की अर्थात् ***'मानव-धर्म'*** की पुनर्स्थापना स्वतः हो जायेगी और विश्व में सुख एवम् शान्ति की बहाली होगी। *ईश्वर करे यह सुखद विचार शीघ्र मूर्तरूप धारण करे !*

होम्योपैथी का भविष्य भी उज्ज्वल है। होम्यो औषधि के निदान हेतु जब कोई अति सम्वेदनशील यन्त्र बन जायेगा, तब अनेक मनोरोगों तथा दैहिक रोगों के उपचार में सुविधा होगी और मानवता का महान कल्याण भी होगा। अस्तु !

27. गुरु वन्दना :- अन्त में एक बार पुनः मैं अपने चार गुरुओं को प्रणाम करता हूँ, जिनके अपार ज्ञानवर्धक साहित्य से थोड़े-थोड़े पुष्प चुनकर इस गुलदस्ते को सजाने का प्रयास किया गया है। वे वन्दनीय गुरुजन हैं - *(a)* ***भगवान श्रीकृष्ण*** *(श्रीमद्भगवद् गीता शास्त्र के उद्घोषक) (b)* ***स्वामी विवेकानन्द*** - बी.ए. *(अद्वैत विचार के समर्थक एवम् प्रचारक) (c)* ***स्वामी चिन्मयानन्द*** - एम.ए.एल.एल.बी. *(अद्वैत विचार के व्याख्याता) (d)* ***डॉ० फ्रिटजोफ कापरा*** - Ph.D. (Particle Physics) *(आधुनिक विज्ञान एवम् भारतीय आत्मविज्ञान का, जिन्होंने अपनी उत्कृष्ट एवम् विश्वप्रसिद्ध पुस्तक The Tao of Physics के माध्यम से सफल समन्वय किया)।*

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भाग् भवेत्।

सभी प्राणी सुखी हों, सभी प्राणी माया से मुक्त हों। सभी मानव सात्विक विचारों वाले हों, कोई भी दुखी न हो।

ॐ पूर्ण मदः, पूर्णमिदम्। पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।।
पूर्णस्य पूर्णमादाय। पूर्णमेवावशिष्यते।।

भावार्थ :- अनन्त में से अनन्त को निकाल देने पर भी अनन्त ही शेष रहता है।

धन्यवाद !

'तन्मय'

हरिः ॐ तत् सत् !